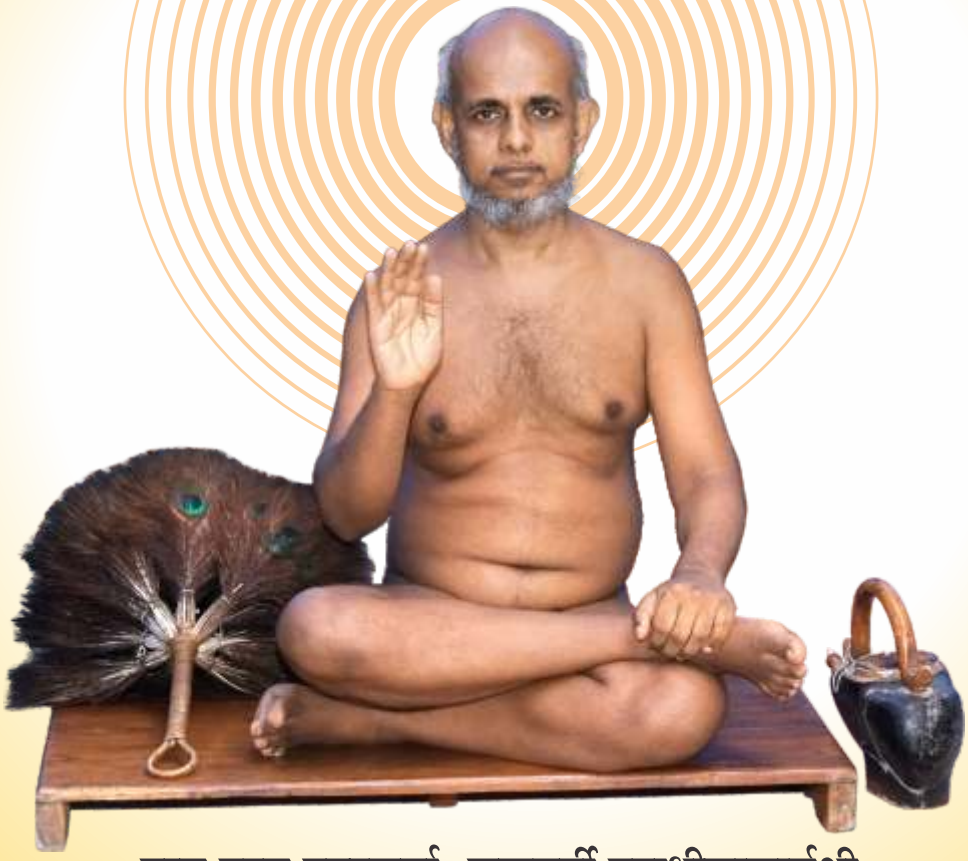

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

जैनधर्म–दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता

व्याख्यानकर्ता
प्रोफेसर लक्ष्मीचन्द्र जैन

हीं

प्रकाशक
श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान
नरिया, वाराणसी

(परम्परानायक)

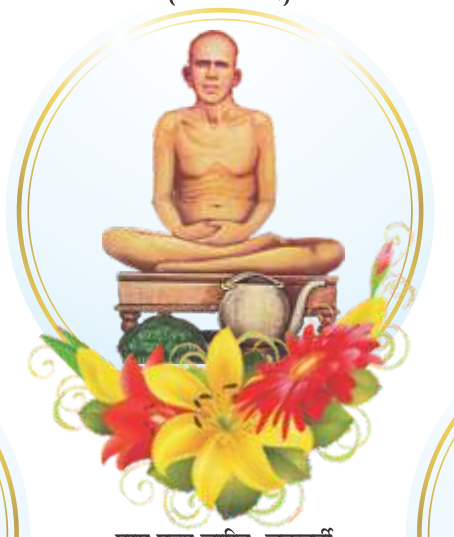

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

व्याख्यानमाला–२

जैनधर्म-दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता

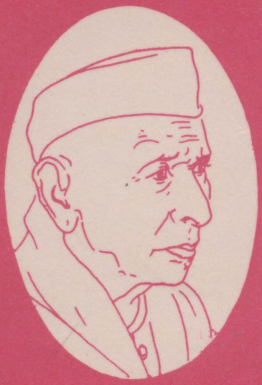

व्याख्यानकर्ता
प्रोफेसर लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रकाशक
सि० पं० फूलचन्द्र शास्त्री फाउन्डेशन, रुड़की
के सहयोग से
श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान
नरिया, वाराणसी–५

श्री गणेश वर्णी दि० जैन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत
सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री स्मृति व्याख्यानमाला–२
रजत जयन्ती वर्ष प्रकाशन

जैनधर्म-दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता

व्याख्यानकर्ता
प्रोफेसर लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रकाशक
सि० पं० फूलचन्द्र शास्त्री फाउन्डेशन, रुड़की
के सहयोग से

श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान
नरिया, वाराणसी–५

व्याख्यानमाला संयोजक,
डॉ० फूलचन्द्र जैन प्रेमी, वाराणसी

प्रकाशक :
श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, वाराणसी

प्रथम संस्करण–सितम्बर १९९६

मूल्य – रु० २०.००

मुद्रक :
वर्द्धमान मुद्रणालय,
जवाहरनगर, वाराणसी-१०

Under Shree Ganesh Varni Dig. Jain Granthalay Sidhantacharya
Pt. Phoolchandra Shastri Memorial Lecture. Series-2

JAIN DHARMA-DARSHAN KE PRAMUKH SIDHĀNTON KI VAIGĀNIKATĀ

By
Prof. Laxmichand Jain

Published by
Shree Ganesh Varni Dig. Jain Sansthan
Naria Varanasi.

With the help of
Sidhantacharya Pt. Phool Chandra Shastri Foundation,
Roorkee
1996

Lecture Series Convener,
Dr. Phoolchandra Premi, Varanasi.

Published by
Shri Ganesh Varni Dig. Jain Sansthan, Varanasi.

First Edition, September 1996

Price : Rs. 20.00

Printed at
Vardhman Mudranalaya,
Jawahar Nagar, Varanasi-10.

संयोजकीय

जैनधर्म विश्व के प्राचीनतम धर्मों में से एक महान् धर्म है। सम्पूर्ण सांसारिक प्राणियों के अभ्युदय और श्रेयस हेतु जैनधर्म-दर्शन के विविध अनुपम सिद्धान्त और इसकी चिन्तन-प्रणाली पूर्णतः वैज्ञानिक होने से सर्वदा उपादेय है। सुप्रसिद्ध इटालियन विद्वान् टेसीटोरी ने भी कहा है "जैन दर्शन बड़ी उच्चश्रेणी का दर्शन है इसके सिद्धान्त विज्ञान के आधार पर रचे गये हैं। ज्यों-ज्यों जीव एवं पदार्थ-विज्ञान उन्नति करता जा रहा है, त्यों-त्यों इसके सिद्धान्तों की सत्यता प्रमाणित होती जा रही है।" इसीलिए विज्ञान के इस युग में जनमानस का ध्यान भी विज्ञान के नित-नये बढ़ते विभिन्न क्षेत्रों की ओर आकर्षित हुआ है। अतः अब यह जरूरी हो गया है कि धर्म के सिद्धान्तों को वैज्ञानिक कसौटी पर कसकर उन्हें प्रस्तुत किया जाए ताकि धर्म के प्रति आस्था तथा आकर्षण बढ़े, क्योंकि इससे प्रभावित नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का महत्त्व व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रिय जीवन के स्तरोन्नयन एवं नवनिर्माण में सर्वाधिक है। इसीलिये संस्थान भवन में दो सितम्बर १९९४ को आयोजित द्वितीय सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री स्मृति-व्याख्यानमाला के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रिय ख्यातिप्राप्त गणितज्ञ एवं वैज्ञानिक प्रो० लक्ष्मीचन्द जैन, निदेशक, आचार्य विद्यासागर शोध संस्थान, जबलपुर के दो सत्रों में व्याख्यान आयोजित हुए। इसकी अध्यक्षता जे० कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन, राजघाट, वाराणसी के रेक्टर, प्रो० पी० कृष्णा ने की। व्याख्यानमाला का उद्घाटन गोरखपुर विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति, प्रो० बी० एम० शुक्ला ने किया। यद्यपि यह विषय इतना विशाल है कि इस पर अनेक शोध प्रबन्ध लिखे जा सकते हैं किन्तु विषय और समय सीमा को देखते हुए यहाँ कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का ही विवेचन विद्वान वक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया था, जिन्हें सभी के लाभार्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

इसके प्रकाशन में आर्थिक सहयोग हेतु सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री फाउण्डेशन रुड़की के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

अष्टाह्निका पर्व
३०-७-१९९६

व्याख्यानमाला-संयोजक
डॉ० फूलचन्द जैन प्रेमी

व्याख्यानकर्ता

प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन

सुप्रसिद्ध गणितज्ञ प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन का जन्म मध्यप्रदेश के सागर जिले में हुआ। सागर विश्वविद्यालय से सन् १९४२ में स्नातकोत्तर उपाधि ग्रहण करने के साथ-साथ उन्होंने होमियोपैथिक एवं बायोकेमिक चिकित्सकीय डिप्लोमा भी प्राप्त किया।

प्रो० जैन ने मध्यप्रदेश शासकीय शैक्षणिक सेवा सन् १९५१ में प्रारम्भ की और विविध संस्थानों में विविध दायित्वों का निर्वाह करते हुए, अन्ततः शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिंदवाड़ा से सन् १९८४ में सेवानिवृत हुए। वर्तमान में आचार्य विद्यासागर शोध संस्थान, पिसन हारी मढ़िया-जबलपुर के मानद निदेशक का दायित्व निर्वहन कर रहे हैं।

प्रो० जैन मुख्यतः गणितज्ञ हैं और आपने आइंस्टाइन के सापेक्षवाद सिद्धान्त पर गुरुतर कार्य किया है। इतना ही नहीं, वे गणित सम्बन्धी संस्कृत-प्राकृत वाङ्मय के तलस्पर्शी विद्वान् हैं। हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में समान रूप से आपकी अच्छी गति है। उन्होंने भारतीय गणित के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक इतिहास से सम्बन्धित अनेकों मौलिक सन्दर्भों को रेखांकित किया है। कुछ समय पहले, उन्होंने जैनधर्म सिद्धान्त से सम्बन्धित 'लब्धिसार' (१००० ए० डी०) एवं 'प्रस्तार रत्नावली' (Prastār Ratnāvali) पर महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया है, जो प्रकाशित है। सम्प्रति प्रो० जैन करणानुयोग में गणितीय सन्दर्भों पर कार्य कर रहे हैं। आपने अपनी इस महत्त्वपूर्ण विद्या के विकास, प्रचार, प्रसार के लिए बहुत कार्य किया है। देश-विदेश में आपके अनेक शिष्य हैं। इन विषयों पर शोध कार्य हेतु अनेक शोधार्थियों को आपका निरन्तर मार्गदर्शन प्राप्त है।

विगत तीन दशकों से प्रो० जैन प्राच्यगणितशास्त्र के पूर्ण समर्पित विद्वान् हैं उनके समर्पण-भाव और गणित जैसे अछूते और

अनूठे एवं जटिल विषय पर गम्भीर अध्ययन-अध्यापन एवं सक्रिय निर्देशन के कारण उन्हें प्राकृत ज्ञान भारती एजूकेशन ट्रस्ट बेंगलोर द्वारा सम्मानित किया गया है । इनकी अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियाँ प्रवचनसार एक अध्ययन और Tao of Jain Science पठनीय एवं संग्रहणीय हैं । हिन्दी-अंग्रेजी तथा अन्यान्य भाषाओं की देशी-विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में आपके शताधिक शोध-निबन्ध भी प्रकाशित हैं । फिर भी आपका जीवन "सादा जीवन उच्च विचार" की उक्ति को चरितार्थ करता है। संस्थान ऐसे महान् विद्वान् के व्याख्यानों के लाभ से गौरव का अनुभव कर रहा है ।

*

सारांश

स्व.पं. फूल चन्द्र शास्त्री स्मृति व्याख्यान माला के अन्तर्गत प्रस्तुत ये दो व्याख्यान क्रमशः वस्तुनिष्ठ एवं व्यक्तिनिष्ठ एक सूत्री अध्ययन का पथ प्रकाशित करेंगे जो जैन धर्म-दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों की वैज्ञानिक भावना से सम्बन्धित है।

विज्ञान एवं धर्म और दर्शन से संबंध निरूपित करते हुए सर्वप्रथम भाषा एवं गणित के श्रुत एवं लिपि विज्ञान का परिचय देते हुए प्रमाण एवं नय की वैज्ञानिकता प्रस्तुत की गयी है। न्याय सिद्धान्त का अभ्युदय, विकास एवं जैन विशेष वैज्ञानिक पद्धति का विश्लेषण किया गया है, जिसमें अनेकान्तवाद एवं स्याद्वाद का परिचय है। त्रिलोक-प्रज्ञप्ति विषयक भौगोलिक विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, खगोल विज्ञान के नमूनों की वैज्ञानिक क्षमता और स्थिति कालादि की इकाइयों द्वारा पुद्गलादि का विवेचन दिया गया है। कर्म सिद्धान्त में राशि सिद्धान्त, नियंत्रण सिद्धान्त एवं प्रणाली सिद्धान्त का आधुनिक प्रसंग में प्रयोगात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। इन सभी सिद्धान्तों का समाज नीति, राजनीति एवं विदेश नीति पर प्रभाव का वैज्ञानिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न विकसित जैन कलाओं में विज्ञान की भूमिका का अध्ययन किया गया है। जैन आचार-विचार वैज्ञानिक पद्धति का, आयुर्वेद, पर्यावरण, शाकाहारादि एवं संस्कृति पर प्रभाव का भी मूल्यांकन किया गया है। इस प्रकार वस्तुनिष्ठ अध्ययन हुआ है।

व्यक्तिनिष्ठ अथवा आत्मनिष्ठ अध्ययन में चिर सम्मत जैन साहित्य में द्रव्यानुयोग एवं करणानुयोग की वैज्ञानिक भूमिका का निदर्शन किया गया है। दर्शन मोह और चरित्र मोह में प्रयुक्त गणित विज्ञान की विशेषताओं का वैज्ञानिक अध्ययन किस प्रकार किया जाये-इस समस्या का निदान किया गया है। लब्धियों रूप विकास एवं पाँचवीं लब्धि में परिणामों का वैज्ञानिक स्वरूप बतलाया गया है।

क्षमादि दस लक्षण धर्म की वैज्ञानिक महत्ता-

अनन्तानुबंधी के विसंयोजन तथा मिथ्यात्व को तीन भागों में विभक्त करके कार्यकारी परिणामों की वैज्ञानिक विशेषता और इस प्रकार अहिंसा एवं अपरिग्रह द्वारा स्वतंत्रता (मुक्ति) की ओर वैज्ञानिक प्रगति की जैन धर्म-दर्शन की भूमिका का समालोचन, शृंखलाबद्ध प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में हुआ है।

—लक्ष्मीचन्द्र जैन

व्याख्यान

भूमिका :-

समझ के विगत में कुछ ऐसी घातक भूलें हुई हैं जिनसे धर्म और विज्ञान के बीच एक बड़ी खाई खिंची हुई सी प्रतीत होती हैं, तथा उसे निम्न रूप में वैज्ञानिकों ने विश्लेषित किया है : [1]

1. धर्म श्रद्धा पर आधारित होता है किन्तु विज्ञान तथ्यों पर ।

2. धर्म तर्क बुद्धि को भावना के आश्रित बनाता है किन्तु विज्ञान उसे विकसित करता है ।

3. धर्म संवेगात्मक है, किन्तु विज्ञान अभावात्मक ।

4. धर्म का सार्वत्रिक एवं सार्वकालिक आधार विश्वास होता है किन्तु विज्ञान द्वारा स्थापित सत्य कभी भी अंतिम नहीं माने जाते हैं ।

5. धर्म अपने अवलंबियों को मार्यादा का उल्लंघन करने पर चेतावनी देता है किन्तु विज्ञान समन्वेषी अनुभववादी तथा असीम होता है ।

6. धर्म यथापूर्व स्थिति को सुरक्षित रख दिव्य श्रुत के मताग्रह को स्वीकार करता है, किन्तु विज्ञान परिवर्तन में विश्वास करता है । अचल के सिवाय सभी कुछ है ।

7. धर्म द्वारा पाँचवीं से सत्रहवीं सदी तक विज्ञान के विकास को रोकने हेतु यूरोप में विशेष प्रयास किया गया, किन्तु विज्ञान असीमित होता चला गया ।

8. धर्म भेदभाव को पनपाता रहा है, किन्तु विज्ञान अपनी सभी शाखाओं में ऐक्य तथा समन्वय स्थापित करना चाहता है ।

9. धर्म असहिष्णुता का एकार्थवाची बन चुका है, वहाँ विज्ञान सत्यवादी सहिष्णुता का ।

किन्तु सापेक्षता के गणित विज्ञान को चरम सीमा तक पहुँचा कर भौतिकी में अद्‌भुत क्रांतिकारी परिवर्तन करने वाले वैज्ञानिक आइंस्टाइन ने विज्ञान और धर्म को दूसरे ही रूप में देखा और कहा कि बिना धर्म के विज्ञान अपंग है और बिना विज्ञान के धर्म अंधा है। [2] उनके अनुसार विज्ञान यह था, "As to sceince, we may well define it for our purpose as 'methodical thinking directed toward finding regulative connections between our sensual experiences.' Science, in the immediate, produces knowledge and, indirectly, means of action. It leads to menthodical action if definite goals are set up in advance." [3]

वहीं धर्म के सम्बन्ध में उनका विचार था, "As regards religion, on the other hand, one is generally agreed that it deals with goals and evaluations and, in general, with the emotional foundation of human thinking and acting, as far as these are not predetermined by the inalterable heredity disposition of the human species. Religion is concerned with man's attitude toward nature at large, with the establishing of ideals for the individual and communal life, and with mutual human relationship." [4]

वस्तुत: जैन धर्म की विलक्षणता उपरोक्त दोनों परिभाषाओं को एकसूत्री रूप देकर, उस पर अमल करना ही रही है। सर्वप्रथम हमारी दृष्टि उसके द्वारा निर्वाचित वस्तुनिष्ठ अध्ययन पर आकर्षित होती है, जो ऐसे प्रमुख सिद्धान्तों को विश्व के समक्ष लाया जो अद्‌भुत वैज्ञानिक प्रतिभा से ओतप्रोत थे तथा जो अंतत: परिणामों के वैज्ञानिक सिद्धान्त द्वारा जड़चेतन की ग्रंथि को सुलझाने में आधारभूत थे।

ध्वन्यात्मक एवं लिप्यात्मक भाषा एवं गणित निर्माण

साधारणत: साहित्य में दो तत्त्वों का ग्रहण होता है-शाब्दिक या रचनात्मक और आर्थिक या विचारात्मक। इन्हें द्रव्यश्रुत और भावश्रुत कहा गया है। भावश्रुत की अपेक्षा से जन-श्रुतांगों में जो महावीर से पूर्व श्रमण-परम्परा में प्रचलित रचनाएँ थीं, उन्हें पूर्व कहा जाता है। सम्पूर्ण श्रुत द्वादशांग में निबद्ध था और बारहवें अंग दृष्टिवाद में ऐसे चौदह पूर्वों का उल्लेख है जिसमें अनेक विचारधाराओं, मतमतान्तरों और ज्ञान-विज्ञान का संकलन गौतम गणधर द्वारा किया गया था। बारह अंगों के नाम क्रमश: आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवती व्याख्या प्रज्ञप्ति, ज्ञातृ धर्म कथा, उपासकाध्ययन, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिक, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र तथा दृष्टिवाद हैं। इनके विशद वर्णन विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। [5]

चौदह पूर्वों के नाम क्रमश: निम्नलिखित हैं, जो दृष्टिवाद के पाँच अंग-परिकर्म, सूत्र,

पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका, में गर्भित हैं तथा विज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं-

1. **उत्पाद पूर्व -**

जीव काल, पुद्गलादि द्रव्यों की उत्पत्ति, विनाश व ध्रौव्य का विचार

2. **अग्रायणीय-**

समस्त द्रव्यों एवं उनकी विभिन्न अवस्थाओं की संख्या, परिमाणादि का विवेचन

3. **वीर्यानुवाद -**

उक्त द्रव्यों के क्षेत्रकालादि की अपेक्षा वीर्य अर्थात् बल सामर्थ्य का विचार

4. **अस्ति-नास्ति प्रवाद -**

लौकिक वस्तुओं के नाना अपेक्षाओं से अस्तित्व नास्तित्व का विवेक

5. **ज्ञान-प्रवाद -**

मति श्रुतादि ज्ञानों तथा उनके भेद प्रभेदों का प्रतिपादन

6. **सत्य-प्रवाद -**

वचन की अपेक्षा सत्य, असत्य, विवेक एवं वक्ताओं की मानसिक परिस्थितियों तथा असत्य के स्वरूपों का विवेचन

7. **आत्म-प्रवाद -**

आत्मा के स्वरूप, उसकी व्यापकता, ज्ञातृ भाव तथा भोक्तापन सम्बन्धी प्रतिपादन

8. **कर्म-प्रवाद -**

नाना प्रकार के कर्मों की प्रकृतियों, स्थितियों, प्रदेशों, अनुभागों आदि का निरूपण

9. **प्रत्याख्यान -**

परिग्रह त्याग, उपवास विधि, मन वचन काय की विशुद्धि आदि आचार सम्बन्धी नियम निर्धारण

10. **विद्यानुवाद -**

विभिन्न विद्याओं और उपविद्याओं का प्ररूपण, तथा इनके अन्तर्गत अंगुष्ट प्रसेनादि सात सौ अल्पविद्याओं, रोहिणी आदि पाँच सौ महाविद्याओं एवं अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन और छिन्न, इन आठ महानिमित्तों द्वारा भविष्य को जानने की विधि निरूपण ।

11. **कल्याणवाद**

(श्वेताम्बर परम्परानुसार अबन्ध्य) में सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और तारागणों को नाना गतियों में देखकर शकुन के विचार, तथा बलदेवों, वासुदेवों, चक्रवर्तियों आदि महापुरुषों के गर्भावतरण आदि के अवसरों पर होने वाले लक्षणों और कल्याणों का वर्णन। (अबन्ध्य = अवश्यम्भावी भविष्य)

12. **प्राणावाय -**

आयुर्वेद (काय-चिकित्साशास्त्र) का प्रतिपादन एवं प्राण अपान आदि वायुओं का शरीर धारण की अपेक्षा से कार्य का विवरण।

13. **क्रियाविशाल -**

लेखन, गणना आदि बहत्तर कलाओं, स्त्रियों के चौंसठ गुणों, शिल्पों, ग्रंथ रचना संबंधी गुणदोषों और छन्दों आदि का प्ररूपण

14. **लोकबिन्दुसार -**

जीवन की श्रेष्ठ क्रियाओं और व्यवहारों एवं उनके निमित्त से मोक्ष के सम्पादन विषयक विचार।

इस प्रकार पूर्वों में धार्मिक, दार्शनिक व नैतिक विचार तो संकलित किये गये थे, किन्तु उनमें विभिन्न कलाओं, ज्योतिषशास्त्र, आयुर्वेद आदि विज्ञानों, फलित ज्योतिष, शकुनशास्त्रादि, वा पंच-तंत्र आदि विषयों को भी शामिल किया गया था।

यह ज्ञात है कि आचार्य भद्रबाहु (चतुर्थ शताब्दी ई.पू.) चौदह पूर्वों के तथा अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता थे। दक्षिण भारत के शिलालेखों के अनुसार उनके शिष्य प्रभाचंद्राचार्य (सम्राट् चन्द्रगुप्त), भी दस पूर्वी थे। उनका बारह वर्ष तक श्रवण बेलगोला के चन्द्रगिरि पर समस्त संघ से विलग होकर समाधि साधन काल तक रहना कोई विशेष साधना का द्योतक है। अशोक के शिलालेखों से पूर्व कोई भारतीय लिपि न होना, तथा मेगास्थिनीज़ का कथन इस ओर संकेत करते हैं कि प्रभाचंद्राचार्य ने अपनी सम्राट् अवस्था के यूनानी लिपि ज्ञान का उपयोग कर्म सिद्धान्त (द्वितीय पूर्व में समाहित) को लिपिबद्ध करने हेतु **ब्राह्मी** एवं **सुन्दरी** (भाषा एवं गणित) नाम की दो लिपियों का आविष्कार करने में आचार्य भद्रबाहु को सहयोग दिया। एतद्विषयक लेखों को विशद रूप में **अर्हत् वचन** पत्रिका के विभिन्न अंकों में वक्ता द्वारा प्रकाशित कराया गया है। कई जैन ग्रन्थों में इन लिपियों का उल्लेख अलग अलग रूप में मिलता ही है, साथ ही वीर निर्वाण से लगभग सात शताब्दियों पश्चात् हुए गिरिनगर की चन्द्रगुफा के निवासी आचार्य धीरसेन के शिष्यों, पुष्पदन्त और भूतबलि को **हीनाक्षरी, घनाक्षरी** मंत्रों को सिद्ध करने देना, पुनः ब्राह्मी, सुन्दरी लिपियों से संबंधित प्रतीत होता है। उन्होंने षट्खंडागम की सूत्ररूप रचना लिपिबद्ध की थी, जो गुणधर आचार्य द्वारा रचित (पाँचवें पूर्व में समाहित) कसायपाहुडसुत्त से ज्यादा काल दूरी नहीं लिए हुए थी। इन लिपियों की रचना

में किसी उत्कृष्ट वैज्ञानिक विधि का अवलम्बन किया गया था, जिससे भाषा एवं गणित की अभिव्यक्ति एक ही व्यंजन में स्वर को बिन्दु अथवा रेखाघात द्वारा क से के, अ से आ आदि रूप में अवतरित किया जा सका। यह विधि विश्व में और कहीं उपलब्ध नहीं थी।

प्रमाण विषयक संदृष्टियाँ

आज के विज्ञान की उत्कृष्ट उपलब्धियों में कारणभूत ऐसे समीकरण होते हैं जो अज्ञात चर तथा ज्ञात चर और अचर राशियों के बीच इंद्रियगम्य अवलोकित न्यास के आधार पर बनाए जाते हैं। वस्तुत: उन्हीं के द्वारा नव अज्ञात विशुद्ध बुद्धि के द्वारा खोज किया जाता है तो इस सिद्धान्त को प्रयोग द्वारा पुष्ट किया जाता है। ठीक यही शैली दिगम्बर जैन कर्म सिद्धान्त विषयक ग्रन्थों की विशाल टीकाओं धवल, महाधवल तथा जयधवल में अंक एवं रेखा संदृष्टि रूप में तथा गोम्मट सारादि की कर्णाटक वृत्ति एवं सम्यक् ज्ञानचंद्रिका टीकाओं में अंक, अर्थ एवं आकार रूप संदृष्टियों में प्राप्त होती है। इन समीकरणों का गणित वस्तुत: परम वैज्ञानिक रूप में विकास को प्राप्त हुआ था जिसमें कर्म परमाणु युक्त निषकों की रचना गुणहानि, स्पर्धक, वर्गणा, वर्ग रूप में दिखा कर अनेक प्रकार के, स्थिति रचना यंत्रादि बनाये गये थे जो अध्ययन की वस्तु बनाये जाना आवश्यक थे और हैं। अभी भी इन्हें और अधिक विकसित किया जा सकता है। वक्ता को इण्डियन नेशनल सांइस अकादमी से लब्धिसार पर प्रोजेक्ट (1984-87) मिला था उसे प्राय: 3000 पृष्ठों में आधुनिक एवं प्राचीन प्रतीकों में पूर्ण किया गया है जो द्रष्टव्य है तथा प्रत्येक जैन शिक्षण संस्था में पढ़ाया जाये तो वह कर्म सिद्धान्त और उससे भी परे की रहस्यमय सामग्री आज के प्रणाली (system) सिद्धान्त तथा नियंत्रण (cybernetics) सिद्धान्त में विशेष अवदान दे सकती है। [8] गणितमय इस विषय को कोर्स में रखना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा। जैसे मैथामेटिकल फिजिक्स आदि का अध्ययन अत्यंत गंभीर और फलदायी सिद्ध हुआ है, उसी प्रकार वक्ता ने मैथामेटिकल जैनालाजी का सिलेबस एम.ए. जैनालाजी के दो वर्ष में पूर्ण किये जाने योग्य कोर्स के रूप में तैयार किया है तथा विभिन्न केन्द्रों में भेजने का विचार किया है।

गणितीय दर्शन एवं न्याय

सम्पूर्ण विश्व के किसी भी धर्म ग्रन्थ में अनन्तों के अल्प बहुत्व का विवरण नहीं मिलता है। दर्शन में भी नहीं उपलब्ध है। केवल जैन ग्रन्थों में, विशेषकर दिगम्बर जैन कर्म सिद्धान्त ग्रन्थों में, अर्थों के प्रतीक सहित अनन्तात्मक राशियों, असंख्यात्मक राशियों एवं संख्यात्मक राशियों के बीच अल्प बहुत्व के सम्बन्ध, उनकी उत्पत्ति, निष्पत्ति आदि, अनेक विधियों द्वारा प्रतिबोधित किये गये हैं। सांत और अनन्त के मध्य असंख्यात का

स्थापित किया जाना भी एक बड़ा आविष्कार था। जार्ज केण्टर द्वारा अनन्त को उचित रूप दिया गया तथा अनन्तों के बीच अल्प बहुत्व स्थापित करने की विधि को निगमन एवं द्विरूप वर्ग धारा जैसी भंग विधि से परिपुष्ट किया गया। त्रिलोकसार एवं गोम्मटसार में तथा धवला टीका में भी ऐसी धाराओं को विकसित किया गया था जो गणितीय न्याय के आविष्कार में एक नया इतिहास जोड़ गया। [9] केण्टर की विकर्ण विधि ने विश्व को बतला दिया कि अनन्त से बड़े अनन्त का भी अस्तित्व असिद्ध नहीं किया जा सकता है। [10] वीरसेनाचार्य ने भी एक-बहुसंवाद, एवं एक-एक संवाद द्वारा जिसे बाद में जार्ज केण्टर द्वारा भी अपनाया गया था, अनन्त से बड़े अनन्त की स्थापना को सिद्ध किया था। [11] ये सभी गणनानन्त कहलाने लगे।

जघन्य और उत्कृष्ट (minima and maxima) प्रमाण राशियों के बीच वर्ती राशियों को मध्यम रूप स्थापित कर, अनेक स्थलों पर विज्ञान का चमत्कार बतलाया गया है। जघन्य और उत्कृष्ट पर आज विज्ञान टिका हुआ है, क्योंकि प्रत्येक विज्ञान में शक्ति समीकरणों की स्थापना और उनसे अज्ञात शक्तियों के प्रमाणों को प्राप्त करना, बलों को प्राप्त करना, आदि जघन्य और उत्कृष्ट प्रमाणों के आधार पर ही हुआ करता है, जिन्हें Principles of Variations कहा जाता है। [12] ऐसे सैकड़ों उदाहरणों से धवलादि टीकाएँ भरी पड़ी हैं। द्विरूप वर्गधारा ही विकल्पों के माध्यम से जुड़ी है जहाँ गणितीय न्याय परिमित से अपरिमित के विधानों को निर्मित करता चला जाता है।

गणितीय न्याय ने अपनी भूमिका वहाँ भी निभाई जब अस्तित्वशील अनन्त असंख्यात राशियों को प्रतिबोधित करने के लिए उपमाप्रमाण और संख्या प्रमाण में अनेक प्रकार की राशियों को उत्पन्न कर उनके समकक्ष अस्तित्वशील राशियों को रखा गया। [13] इस प्रकार संख्या प्रमाण, काल प्रमाण और क्षेत्र प्रमाण द्वारा भाव प्रमाण भी स्थापित किया गया। [14] भाव अत्यन्त सूक्ष्मता लिये हुए है जिसे यहाँ phase of knowledge कहा जा सकता है।

पुन: गणितीय न्याय से सम्बन्धित अनेकान्तवाद एवं स्याद्वाद हैं। वीरसेनाचार्य द्रव्य प्रमाणानुगम में बतलाते हैं, "द्रव्य की एक पर्याय संख्यान है, इसलिये द्रव्य और प्रमाण में एकत्व अर्थात् सर्वथा अभेद नहीं है।" कहा भी है [15]-

नानात्मतामप्रजहत्तदेकमेकात्मतामप्रजहच्च नाना।

अंगागिभावात्तव वस्तु यत्तत् क्रमेणवाग्वाच्यमनन्तरूपम् ॥ 5 ॥

अर्थात् अपने गुणों और पर्यायों की अपेक्षा नाना स्वरूपता को न छोड़ता हुआ वह द्रव्य एक है और अन्वय रूप से एकपने को नहीं छोड़ाता हुआ वह अपने गुणों और पर्यायों की अपेक्षा नाना है। इस प्रकार अनन्त रूप जो वस्तु है वही, हे जिन, आपके मत में क्रमश: अंगांगीभाव से वचनों द्वारा कही जाती है।

षट्खंडागम पुस्तक 15 में भी कहा है-

"पदार्थ अनेक धर्मवाला है, अनित्य है, नित्य है, एक है, अनेक है, यों नाना धर्म रूप पदार्थ को अनेकान्त कहते हैं।" "जात्यन्तर भाव को भी अनेकान्त कहते हैं।" इसके साथ ही एक "एकः अपि अन्तः न विद्यते सः अनेकान्तः" भी कहा जाता है। यह जैन धर्म-दर्शन की मौलिक देन है कि पदार्थ का समग्र निर्णय करने हेतु अनेकान्त को पदार्थ स्वरूप, और उसके निरूपण की पद्धति को स्याद्वाद स्वरूप माना है। वैज्ञानिकता इसमें यही है कि अनेकान्त रूप पदार्थ के विशेषणों को लेकर विभिन्न सापेक्ष दृष्टिकोण लिये स्याद्वाद द्वारा कथन के विशेषण समूह बनाये गये हैं। इस सम्बन्ध में स्याद्वाद का वैज्ञानिक निरूपण महलानवीस तथा हाल्डने द्वारा किया गया है। [16] इन्हीं विभिन्न दृष्टियों को लेकर विभिन्न कथनों के अस्ति नास्ति और अवक्तव्य स्वरूपों को आधुनिक तर्कशास्त्र में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है जिनका उपयोग गणितीय दृष्टिकोणों से विभिन्न प्रकार की समस्याओं को हल करने हेतु (या-बूलीय तर्क) कम्प्यूटर आदि प्रणालियों में हुआ है और होता जा रहा है। गणितीय न्याय के तर्क प्रतीकों में अवतरित हो चुके हैं और गणित को आभासों से बचाने हेतु नई बुनियादें डाली जा चुकी हैं। इनमें विशेष योगदान के लिए राशि सिद्धान्त के विस्तृत क्षेत्र में पीनो, केण्टर, रसैल, ब्रोवर, हिल्बर्ट आदि विद्वान् जगत्प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। राशियों को क्रमबद्ध अथवा अक्रमबद्ध रूप रचित करने सुक्रमबद्धी साध्य तथा विकल्प स्वयंसिद्ध रूप में बनाये जा चुके हैं जिनसे क्रमबद्धपर्याय आदि नये प्रचलित सिद्धान्तों का अच्छी तरह विश्लेषण एवं निर्णय किया जा सकता है। [17] जहाँ भी केवल ज्ञान राशि में गर्भित राशियों के प्रतिबोधादि की समस्याएँ उठ खड़ी होंगी, उन्हें वैज्ञानिक पद्धति द्वारा हल करना युक्ति संगत होगा। वहाँ आकारी तर्कशास्त्र (Formal Logic) का प्रयोग अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकेगा। गंभीर चर्चाओं एवं गहन अध्ययन वाली संस्थाओं में, न कि जल्प-वितण्डित लोक चर्चा में, इन्हें स्थान दिया जाना अब आवश्यक हो गया है यदि हम सत्यान्वेषण को प्रश्रय देना चाहते हैं। [18] विस्तार भय से हम इस विषय को यहीं छोड़ना उपयुक्त समझते हैं। नयों, उपनयों का विस्तृत विवेचन मनोहर लाल वर्णी 'सहजानन्द' द्वारा समयसार एवं प्रवचनसार की सप्त दशांगी टीकाओं में वैज्ञानिक पद्धति से किया गया है और वह विदेशों में गहनतम अध्ययन की वस्तु बन सकता है। [19] यहाँ हम सुरेन्द्र बारलिंगे की अभ्युक्ति प्रस्तुत करते हैं जो उन्होंने भारतीय तर्कशास्त्र की रूपरेखा में प्रस्तुत की है -

"जैन तर्कज्ञों के तर्कशास्त्रीय विचार भी सचमुच उपेक्षणीय नहीं हैं। वस्तुतः जैन तर्कशास्त्र की एक स्वतंत्र और प्रदीर्घ 2000 वर्षों की प्राचीन परम्परा रही है। परन्तु जैन तर्कशास्त्र का प्रमुख वैशिष्ट्य उसका प्रसिद्ध सप्तभंगी नय का सिद्धान्त और स्याद्वाद या शक्यताओं के तर्कशास्त्र का सूत्रीकरण है। हमारा यह अभिमत है कि ये दोनों सिद्धान्त स्वतंत्र हैं और तर्कशास्त्र के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। आधुनिक जैन तर्क पंडितो

में किसी न किसी प्रकार की नासमझी के कारण ये दो स्वतंत्र सिद्धान्त एक रूप ही हैं ऐसी धारणा रूढ़ हो गयी होगी।" [20] प्रकृति की घटनाओं का विधान, कार्यकारणता का सिद्धान्त जो जैनदर्शन में युगपतत्व को आधारभूत मानकर लिया है, वह सर्वथा मौलिक है। [21] इस पर कुछ लेख द्रष्टव्य हैं। उनकी वैज्ञानिकता को आज चुनौती नहीं दी जा सकती है जहाँ तक संभावनात्मक विधान प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुके हैं। [22]

त्रिलोक विषयक विज्ञान

सन् 1952 के लगभग डा. हीरालाल जैन द्वारा नागपुर में वक्ता को त्रिलोकप्रज्ञप्ति के गणित पर कार्य सौंपा गया था। तद्नुसार 1958 में तिलोयपण्णत्ती का 105 पृष्ठीय गणित जम्बूदीवपण्णत्ती संगहो में शोलापुर से गणितीय प्रस्तावना रूप में प्रकाशित हुआ था। इस पर देश-विदेश के विद्वानों ने अनेक लेख बनाए। इसी प्रकार महावीराचार्य के गणितसार-संग्रह पर भी देश-विदेश में अनेक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। [23] विशेषकर डा. आर.सी.गुप्ता एवं तकाओ हयाशी (जापान) के साथी अति प्रसिद्ध हो गये हैं। विशुद्धमती आर्यिका द्वारा भी त्रिलोकसार एवं त्रिलोकप्रज्ञप्ति के गणित कार्य में प्रसिद्ध हो चुकी हैं। [24] इसे प्रायोगिक रूप देने में ज्ञानमती आर्यिका भी प्रेरक रूप में विख्यात हो चुकी हैं। [25]

यहाँ विशद विवेचन में न जाकर यह स्पष्ट कर देना पर्याप्त होगा कि जहाँ तक कि भूगोल और गणित ज्योतिर्लोक विज्ञान के स्पष्टीकरण का प्रश्न है, समस्याएँ हैं वे बहुत कुछ वक्ता द्वारा एवं सज्जन सिंह लिश्क की पुस्तक "जैन एस्ट्रानामी" में हल की जा चुकी हैं। ये नमूने गहन अध्ययन के विषय हैं तथा आधुनिक नमूनों (Models) के समकक्ष ऐतिहासिक विकास के अध्ययन रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। उनमें आगे चलकर किस प्रकार बीज डाले गये, एक सूत्री सिद्धान्त में वास्तव में अत्यन्त कठिन प्रश्न है। इन ग्रंथों में कई प्रकार की इकाइयों को, स्थान, काल में स्थिति दिखलाने हेतु निर्मित किया गया है, जिन्हें अनेक नये पारिभाषिक शब्दों में व्यक्त किया गया है, जो अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होते। अंतर्मुहूर्त, गगन खंड, योजन आदि अनेक शब्दों को जैनाचार्यों ने वैज्ञानिकता हेतु ही गढ़ा, जिन्हें कहीं भी किसी भी अन्य शब्दकोशों में उपलब्ध नहीं किया जा सकता है। लब्धिसार प्रोजेक्ट में, तथा ताओ ऑफ जैन साइंसेज़ में वक्ता द्वारा ऐसे अनेक वैज्ञानिक शब्दों को आधुनिक वैज्ञानिक शब्दों से जोड़ दिया गया है। [26]

भूगोल के लिए इकाइयाँ अलग, ज्योतिष के लिए अलग, लोकविज्ञान के लिए अलग होते हुए भी सभी चर्चाओं को एक नक्शे में, एक-सूत्री रूप में, त्रिलोक में डाल दिया गया है, अत: समझना कठिन हो गया है। [27]

गणितानुयोग की प्रस्तावना में गणित ज्योतिष एवं गणित का स्वरूप स्पष्ट किया गया है । [28] तिलोयपण्णत्ती के गणित में संख्या सिद्धान्त, ज्यामिति अवधारणाएँ, अंक गणना, बीज गणित, मापिकी विधियाँ, संदृष्टियाँ तथा ज्योतिष सम्बन्धी गणनाएँ हैं । [29] जैन पंचांग का स्वरूप त्रिलोकसार में वर्णित सामग्री द्वारा तथा सूर्यप्रज्ञप्ति, चंद्र-प्रज्ञप्ति ग्रंथों की सामग्री द्वारा निदर्शित किया जा सकता है । [30] ये सभी वैज्ञानिकताएँ हैं जो इन करणानुयोग के ग्रन्थों में उपलब्ध हैं । जैन ज्योतिष में वस्तुत: एक सूची योजना है, चपटी पृथ्वी का छाया माप संबंधी ज्योतिष गणित है, मेरु, खगोल अक्ष रूप है, बीथियाँ विभिन्न सूर्य, चंद्र, तारों आदि की वर्णित हैं । गति भी उनकी दी गई है, दो सूर्य, दो चंन्द्र को गणितीय सुविधाओं हेतु युक्तिपूर्वक वर्णित किया गया है—इनसे वही पंचांग बनता है जो एक सूर्य, एक चंद्र को लेकर बनाया जाता है । [31] इनके चार्ट एवं सारणियाँ उपलब्ध हैं ।

पुद्गल विषयक विज्ञान

दो शब्दों पुद् एवं गल से बना हुआ यह शब्द भौतिकशास्त्र की उत्पाद एवं व्यय (Creation and Annihilation) क्रियाओं से जुड़ा है । पुद्गल परमाणु के अवगाहन के आधार से प्रदेश की कल्पना है और उसके गमन के आधार से समय (अविभाज्य काल खंड) की कल्पना है जिनका आधार उपमा प्रमाण में लेकर सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगश्रेणी, जगप्रतर, घनलोक तथा पल्य और सागर के प्रमाण रचित किये गये हैं । इनके आधार पर अनेक अस्तित्वशील राशियों के क्षेत्र, काल, प्रमाण बतलाये गये हैं, जिनसे उनके द्रव्य (संख्या) प्रमाण की अधिक जानकारी मिल सके । प्रोफेसर जे.सी.सिकदार ने विभिन्न दर्शनों में दिये गये परमाणुओं से जैन पुद्गल सम्बन्धी ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन को अपनी शोध का विषय बनाया था । देखिये Concept of Matter in Jaina Philosophy जो अब पार्श्वनाथ विद्याश्रम बनारस द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है । [32] वह एक दार्शनिक अध्ययन है और हम इस अध्ययन को वैज्ञानिक रूप में लाने का प्रयास करना आवश्यक समझते हैं । जब भी किसी पदार्थ या वस्तुओं के संग्रह परिमाण बोधक न्यास प्रस्तुत करते हैं तो उस न्यास के आधार पर वैज्ञानिक अध्ययन प्रारम्भ किया जा सकता है । गोम्मटसार जीवकांड और कर्मकांड में पुद्गल के किंचित् दार्शनिक विवेचन को देकर उसकी बंध प्रक्रिया बतलाकर सीधा कर्म सिद्धान्त में प्रयुक्त कर दिया है । बंध प्रक्रिया के सम्बन्ध में उसके स्निग्धत्व और रुक्षत्व गुणों के अंशों के बीच संबंध स्थापित कर विभिन्न प्रकार के अणु, स्कन्ध आदि की रचना बतलाई गयी है । [33] इस पर कई लेख भी प्रकाशित होते रहे हैं ।23 प्रकार की वर्गणाएँ भी बतलाई गई हैं । [34] पुद्गल परमाणु के द्वारा शब्द, प्रकाशादि को पुद्गल द्रव्य की पर्यायरूप मान्यता दी गई है । [35] गुणों के अंश 0 से लेकर अनन्त प्राकृत संख्या रूप, 0 से लेकर 1, 3,

5,... अनन्त तक तथा 0 से लेकर 2, 4,6... अनन्त तक माने गये हैं। कहां और कैसे इनका बंध हो सकता है और कहाँ बंध वर्जित है, यह विधान किया गया है। [36] इत्यादि रूप यह वर्णन वैज्ञानिक भी कहा जा सकता है। किन्तु उन्नति वहाँ तक होनी चाहिये जहाँ आज के अणु की संरचना भी समझाई जा सके।

जहाँ पुद्गल सम्बन्धी ज्ञान कर्म-सिद्धान्त में प्रवेश करता है वहाँ वह अत्यन्त जटिल निरूपण तक पहुँचता है। गोम्मटसार और लब्धिसार की टीकाओं में ये प्रकरण कर्म द्रव्य को लेकर वर्णित किये गये हैं। इनकी कर्णाटक वृत्ति (केशववर्णीकृत), संस्कृत टीका तथा सम्यग्ज्ञानचंद्रिकाटीका (मुनि नेमिचंद्र की संस्कृत टीका पर आधारित पं. टोडरमल की टीका) क्रमश: कलकत्ता 1918, एवं भारतीय ज्ञानपीठ से क्रमश: 1978-1981 में चार खंडों में प्रकाशित हुई है। इनमें अर्थ संदृष्टि मय गणितीय निरूपण दिये गये हैं। लब्धिसार की टीका उसी रूप में अगास से प्रकाशित हुई है। [37] इनमें वैज्ञानिक अध्ययन किये गये हैं और आगे भी किये जा सकते हैं। प्रकृति, प्रदेश, अनुभाग और स्थिति को लिए पुद्गल कर्म द्रव्य के चारों प्रमाण गणित का विषय बन जाते हैं और सभी कर्म बंध संबंधी दशाओं में परिवर्तन के प्रमाण प्रदेश और अनुभाग को तथा काल को लिए प्रवृत्तियों के साथ-साथ चाहते हैं। [38] यह प्ररूपणा समूह रूप के गणित को लेकर चलती है और अर्थ, अंक तथा आकार रूप संदृष्टियों को लेकर चलने से यथार्थ विज्ञान का विषय बन जाती हैं। अज्ञात को ज्ञात राशियों द्वारा प्रतिसमय करणों आदि के अनुसार परिवर्तन, परिणमन प्रकट करते चलना, यह लब्धिसार में दिया गया है। [39] कर्मबंध की दशाओं का वर्णन गोम्मटसार में, जो षट्खंडागम धवल टीकादि के सार रूप हैं, तथा कर्मबंध के उपशम, क्षय को लेकर मुक्त होने तक के विभिन्न कर्म प्रक्रियाओं में होने वाले परिणमन आदि का विवरण लब्धिसार में मिलता है जो कषायप्राभृत के या जयधवला के सार रूप है। सत्वादि दशाएँ, आस्रव, निर्जरादि दशाएँ, अपकर्षण, उत्कर्षण आदि, निधत्ति, निकाचन आदि सभी के गणितीय निरूपण से यह ज्ञान आज के प्रणाली सिद्धान्त और नियंत्रण सिद्धान्त (System theory and Cybernetics) के समतुल्य हैं और जीव, पुद्गल (Bios and Matter) से संबंधित एक सूत्री होने से ऐसे स्तर का कहा जा सकता है कि इस स्तर तक आज का विज्ञान भी नही पहुँच सका है, हालाँकि जैन कर्म-सिद्धान्त विषयक यह नमूना अभी तक किन्हीं संयन्त्रो की परिधि में नहीं लाया गया है और उसके प्रयोगों को मापा भी नहीं गया है, किन्तु यदि उसे आनुमानिक संभावनाओं के गणित पर आधारित कम्प्यूटर पर बैठाया जा सके तो उसकी गहराइयों और आन्तरिक भावनाओं तक पहुँचा जा सकता है जिनके आधार पर यह नमूना तैयार किया गया होगा और अमूर्त कल्पनाओं के गणित संकेतों द्वारा रचा गया होगा। [40]

पुद्गल सम्बन्धी इतनी जानकारी को लिए जैन आचार्यों ने अनेक वैद्यक ग्रन्थों की रचना भी की। राजेन्द्र भटनागर ने जैन विद्वानों द्वारा वैद्यक कर्म अंगीकार किये जाने पर चिकित्सा में दो प्रभाव परिलक्षित हुए माने हैं। [41]

1. अहिंसावादी जैनों ने शवच्छेदन प्रणाली और शल्य चिकित्सा को हिंसक कार्य मानकर चिकित्सा कार्य से उन्हें अप्रचलित कर दिया। परिणाम स्वरूप हमारा शरीर सम्बन्धी ज्ञान शनैः शनैः क्षीण होता गया और शल्य चिकित्सा का ह्रास हो गया। उनका यह पूर्ण निषेध भारतीय शल्य चिकित्सा की अवनति का एक महत्त्वपूर्ण कारण बना।
2. जहाँ एक ओर जैन विद्वानों ने शल्य चिकित्सा का निषेध किया, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने रस योगों (पारद संनिर्मित व धातुयुक्त व भस्में) और सिद्ध योगों का बाहुल्येन उपयोग करना प्रारम्भ किया।....
3. भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर रोग निदान के लिए नाड़ी परीक्षा, मूत्र परीक्षा आदि को भी जैन वैद्यों ने प्रश्रय दिया।...
4. औषधि चिकित्सा में माँस और माँस रसादि योग जैन वैद्यों द्वारा निषिद्ध कर दिये गये।... 'कल्याणकारक' नामक जैन-वैद्यक ग्रन्थ में तो माँस के निषेध की युक्तियुक्त विवेचना की गई है।
5. इस प्रकार केवल वानस्पतिक और खनिज-द्रव्यों से निर्मित योगों का जैन-आयुर्वेदज्ञों द्वारा चिकित्सा-कार्य में विशेष रूप से प्रचलन किया गया।...

पुनः भटनाकर के अनुसार अपने धार्मिक सिद्धान्तानुसार ही मुख्य रूप से चिकित्सा-शास्त्र का प्रतिपादन किया है, जैसे रात्रि-भोजन निषेघ, मद्य, माँस, मधु, का वर्जन आदि। अहिंसा तथा अंतिम लक्ष्य पारमार्थिक स्वास्थ्य लाभ कर मोक्ष मार्ग को अपनाया है। वस्तुतः मक्ष्याभक्ष्य, सेकासेक आदि पदार्थों का उपदेश भी दिया गया है। जैनाचार्यों द्वार प्रतिपादित आयुर्वेद को "प्राणावाय" के अन्तर्गत माना जाना चाहिये, चाहे वैद्यक ग्रन्थों की उपलब्धि प्रायः सातवीं सदी से पंजाब, राजस्थान, गुजरात, कच्छ, सौराष्ट्र और कर्णाटक में हुई हो। हस्तिरुचि कृत वैद्यवल्लभ और हर्षकीर्तिसूरिकृत योगचिंतामणि का विशेष प्रचार प्रसार रहा है। प्राणावाय बारहवाँ पूर्व है। दिगम्बर आचार्य उग्रादित्य ने 'कल्याणकारक' के प्रथम परिच्छेद में "प्राणावाय" के इस भूलोक पर अवतरण और परम्परा का वर्णन किया है। भगवान आदिनाथ ने पुरुष, रोग, औषधि और काल द्वारा "वस्तु चतुष्टय" के लक्षणों आदि का वर्णन किया है और परम्परा से यह ग्रंथ उसी प्रकार रचित हुआ है। उग्रादित्य के अनुसार, "पूज्यपाद ने शालाक्य संबंधी, पात्रस्वामी ने शल्यतन्त्र पर, सिद्धसेन ने विष और उग्र ग्रह शमन-विधि पर, दशरथ गुरु ने

काय-चिकित्सा पर, मेघनाद ने बाल रोगों पर और सिंहनाद ने रसायन व बलवर्धक द्रव्यों (बाजीकरण) पर ग्रंथ रचना की थी।" अत: भटनागर का शल्य सम्बन्धी उपेक्षा का मत निरस्त हो जाता है। बाद में समन्त भद्राचार्य ने आठों अंगों विषयक सामग्री को एकत्रित और सुनिबंधित कर अष्टांग आयुर्वेद संबंधी कोई महान् ग्रन्थ की रचना की थी। उग्रादित्य ने अपने गुरु श्रीनंदी से इसी का अध्ययन कर 'कल्याणकारक' की रचना की थी। इस प्रकार जैनाचार्यों ने अहिंसादि सिद्धान्तों का भलीभांति परिपालन करने हेतु नये वैज्ञानिक तरीके से "प्राणावाय" का अनुसरण किया और आयुर्वेद को नई दिशा दी। स्पष्ट है कि इससे पर्यावरण पर विशेष प्रभाव पड़ता रहा होगा तथा उन्हें, उग्रादित्य को जैसे अमोघवर्ष द्वारा सम्मान प्राप्य था, उसी प्रकार राज्याश्रय मिलता रहा होगा। इसके पश्चात् भी 19वीं सदी तक जैन वैद्यक ग्रन्थों की रचना होती रही जिसका विवरण नाहटा एवं नेमिचंद्र के लेखों से प्राप्त हो सकता है। [42] निस्संदेह अहिंसा के मूल सिद्धान्त ने आयुर्वेद को जो दिशा दी वह सूक्ष्म परमाणु की अधिकतम शक्ति के सिद्धान्त को भी लिये थी, और उसी के द्वारा संतुलित पर्यावरण निर्माण भी निर्मित होता रहा था।

जैन धर्म-दर्शन से प्रभावित कलाओं का विज्ञान

जैन कलाओं में गृह-निर्माण, मूर्ति-निर्माण, चित्र-निर्माण, संगीत और काव्यकृतियाँ सभी किसी न किसी रूप में प्रसिद्ध हुई हैं। दक्षिण में गोम्मटेश्वर की मूर्ति एवं कक्ष, आबू में मंदिर निर्माण शैली, मिनिएचर जैन पेंटिंग, विविध संगीत एवं समन्तभद्राचार्यादि की काव्य कृतियाँ अपने आप में न केवल कला की अद्वितीय प्रतिभा से ओतप्रोत हैं वरन् उनमें विज्ञान के गहरे रहस्य भी वीतरागता को लिए छिपे हुए हैं। वस्तुत: जैन धर्म में अनेकान्त दृष्टि के अनुसार जीवन के समस्त पक्षों पर यथोचित प्रयोग किया गया है। जैन धर्म ने आत्मा को परमात्मा बनाने का स्वतंत्र पक्ष दिया, कर्म सिद्धान्त द्वारा प्रत्येक जीव को स्वयं के लिए उत्तरदायी बनाया, संयम द्वारा समाज को सुव्यवस्थित किया, मुनिधर्म द्वारा सर्वथा नि:स्वार्थ, निस्पृह, निरीह, सिंहवृत्ति - पूर्ण वीतरागता का, कल्याण का आदर्श उपस्थित किया। उसने 72 कलाओं का विशद वर्णन दिया और इन सभी में गणित के उपयोग ने उन्हें भी वैज्ञानिक बना दिया—जैसा महावीराचार्य ने गणितसार-संग्रह में कहा है—

"लौकिके वैदिके वापि तथा सामायिकेऽपि य:।
व्यापारस्तत्र सर्वत्र संख्यानमुपयुज्यते ॥ 9 ॥
कामतन्त्रेऽर्थशास्त्रे च गांधर्वे नाटकेऽपि वा।
सूपशास्त्रे तथा वैद्ये वास्तुविद्यादि वस्तुषु ॥ 10 ॥
छन्दोऽलङ्कारकाव्येषु तर्कव्याकरणादिषु।
कलागुणेषु सर्वेषु प्रस्तुतं गणितं परम् ॥ 11 ॥

सूर्यादिग्रहचारेषु ग्रहणे ग्रहसंयुतौ।
त्रिप्रश्ने चन्द्रवृत्तौ च सर्वत्राङ्गीकृतं हि तत्॥ 12॥
द्वीपसागरशैलानां संख्या व्यासपरिक्षिपः।
भवनव्यन्तरज्योतिर्लोककल्पाधिवासिनाम्॥ 13॥
नारकाणां च सर्वेषां श्रेणीबन्धेन्द्रकोत्कराः।
प्रकीर्णकप्रमाणाद्या बुध्यन्ते गणितेन ते॥ 14॥
प्राणिनां तत्र संस्थानमायुरष्टगुणादयः।
यात्राद्याः संहिताद्याश्च सर्वे ते गणिताश्रयाः
बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरे।
यत्किंचिद्वस्तु तत्सर्वं गणितेन विना न हि॥ 16॥" (अध्याय-९)

जैन वास्तुकला, जैन आगम, करणानुयोग साहित्य से प्रभावित रही है। तिलोय-पण्णत्ति में (अधि. 3, गा. 22-62) असुरकुमारादि भवनवासी देवों के भवनों, वेदिकाओं, कूटों, जिन मन्दिरों वा प्रासादों का दर्शन करते हैं, जिनमें सुव्यवस्थित रूप से समानुपातिक मापों के अनुसार निर्मित विविध वस्तुएँ होती हैं। इसी प्रकार मेरु की रचना, नन्दीश्वर द्वीप की रचना, समवसरण की रचना, मानस्तम्भों की रचना, चैत्य वृक्ष, स्तूप, श्रीमंडप, नगरविन्यास चैत्य रचना आदि के वर्णन के अनुसार पूरी सामग्री प्राप्त हुई है। [44]

इसी प्रकार प्राचीन काल से एकान्तवास जैन मुनियों की साधना का आवश्यक अंग बतलाया गया है (तत्त्वार्थसूत्र 7,6 सर्वार्थसिद्धि)। अतः अनेक निवास, पर्वतों और वन की शून्य गुफाओं, कोटरों में जिन मूर्ति सहित, निर्जन स्थानों में बनवाने की योजना बनती रही होगी। प्राकृतिक गुफाओं को साधना स्थल मानकर अकृत्रिम चैत्यालय कहा गया होगा। सबसे प्राचीन गुफाएँ बराबर व नागार्जुनी पहाड़ियों पर स्थित हैं, जो ई.पू. तृतीय शती की प्रतीत होती हैं। ये गया से प्रायः 30 किलोमीटर दूर स्थित हैं। ये कठोर तेलिया पाषाण को काटकर मंडप सहित बनाई गई हैं। ई.पू. द्वितीय शती में उदयगिरि की 'हाथी गुफा' में सम्राट् खारवेल का इतिहास प्रसिद्ध प्राकृत शिलालेख प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार राजगिरि, प्रयाग तथा (कौशाम्बी) या कौसम, जूनागढ़, चन्द्रगिरि उस्मानाबाद, तेरापुर, सित्तन्नवासक, बादामी, ऐहोल, एलोरा, अंकाई, तंकाई, ग्वालियर आदि स्थानों पर जैन गुफाएँ निर्मित की गई हैं। [45]

तत्पश्चात् जैन मंदिरों की निर्माण विधि विभिन्न शैलियों में अपने चरम उत्कर्ष तक पहुँची हैं। पाँच शैलियों में नागर, द्राविड़ और बेसर शैलियां गुप्तकाल से प्रारंभ हुईं। देवगढ़, खजुराहो, मुक्तागिरि, कुंडलपुर, सिद्धवरकूट, चूलगिरि, बड़ली, ओसिया, नौल-खा, आबू, देलवाड़ा, शत्रुंजय, गिरनार आदि की कला देखने योग्य है। [46]

खारवेल के शिलालेख से ज्ञात होता है कि ई.पू. चौथी-पाँचवीं शती में भी जिन

मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की जाती थीं। कुषाण काल की अनेक जिन मूर्तियाँ मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त हुई हैं। लोहानीपुर से प्राप्त जिन प्रतिमा और हड़प्पा से प्राप्त मस्तकंहीन नग्न मूर्ति से बड़ा साम्य है। जैन मूर्तियों की विशेषता अलग ही प्रकार की है, जो कायोत्सर्ग या पद्मासन वाली होती हैं। तीर्थंकर मूर्तियों में विशेष चिन्ह भी होते हैं, नासाग्र दृष्टि होती है, और भी लक्षण होते हैं। इस प्रकार प्रतिमा विज्ञान में धातु की मूर्तियाँ, बाहुबलि की मूर्तियाँ, चक्रेश्वरी, पद्मावती आदि यक्षियों की मूर्तियाँ, अम्बिका देवी की मूर्ति, सरस्वती की मूर्ति, अच्युता देवी की मूर्ति, नैगमेश की मूर्ति आदि प्रसिद्ध हैं जो पाई भी जाती हैं। [47] जैन चित्रकला [48] का प्राचीनतम उल्लेख जैन श्रुतांग, नायाधम्म कहाओं में धारणी देवी के शयनागार के वर्णन में प्राप्त है। इसी प्राकर बृहत्कल्पसूत्र भाष्य, आवश्यक-टीका आदि में चित्रकला प्रारम्भ हुई है। ई. 625 से भित्तिचित्र प्राप्त हैं, जो सित्तन्न वासल, एलोरा, श्रवणबेलगोल, जैन मठ में प्राप्त हुए हैं। ताड़पत्रीय चित्र भी 11वीं शती से प्राप्त हैं। षट्खंडागम की ताड़पत्रीय प्रतियों में, निशीथचूर्णि ताड़पत्रीय प्रति में, ओघनिर्युक्ति ताड़पत्रीय प्रति में, कथासंग्रह की ताड़पत्रीय प्रति में, जैन शैली की विशेषता लिए हुए चित्र प्राप्त हैं। बाद के चित्रों का संग्रह साराभाई नवाब और डा. मोती चंद द्वारा मिनिएचर पेंटिंग रूप में प्राप्त है। इसी प्रकार कागज पर भी चित्र पाये गये हैं। ये लगभग 1160 से प्रारंभ हुए माने जाते हैं जिनका प्रारम्भ जैसलमेर जैन भंडार में ध्वन्यालोक-लोचन की प्रति में माना गया है। इसी प्राकर काष्ठ चित्र, वस्त्र पर चित्रकारी आदि प्राप्त हैं। इन सभी में जैन विज्ञान दृष्टिगत है। इसी प्रकार संगीत-कला आदि कलाओं पर सामग्री धीरे-धीरे प्राप्त होती जा रही हैं। [49] सभी में वीतरागता की ओर प्रवृत्ति और संसार से निवृत्ति भावना प्रकट है।

हम गोम्मटेश्वर बाहुबलि की श्रवण बेलगोल में विंध्यगिरि पर स्थित मूर्ति के विज्ञान पर अपना अभिमत प्रकट करेंगे जो अद्‌भुत रूप से रमणीय है, शुचि है, लावण्यमयी है, चारु है, सुन्दर है, शोभित है, कान्तिपूर्ण है, सुषमा सी है, श्रीपूर्ण है, रूपमयी है, सौकुमार्य पूर्ण है, सौभाग्यशाली है, विच्छित्तिमय है, कलापूर्ण है, मुग्धता से ओतप्रोत है, मनोहारी है, अभिराम है, मधुर है। उसके गणितीय अनुपात विलक्षण हैं और उसका शिल्प आकाश में स्पर्श कर रहा है। प्रथम कामदेव गोम्मटेश्वर अपनी बहिन सुन्दरी के केवल एक ही भाई थे। वही सुन्दरी जिन्होंने पिता भगवान ऋषभदेव से अंक विद्या सीखी थी। भगवान् बाहुबली, जिस रूप में जिस प्रकार उकेरे गये, उसी प्राकर अर्थ संदृष्टि मय गणित लिये नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती के गोम्मटसार और लब्धिसार ग्रन्थों का मानों उन्हें दिग्दर्शक बनाया गया ताकि गणित की उपेक्षा न हो पाये। किन्तु अब न तो बृहद् धारा परिकर्म उपलब्ध है, न ही चामुण्डराय की टीकाएँ। हमें प्रारम्भ करना पड़ा है केशववर्णी (13वीं सदी) की कर्णाटक वृत्ति से, जिसका आखिरी रूप पं. टोडरमल की सम्यग्ज्ञान चंद्रिका टीका है जिसके अर्थ संदृष्टि अधिकार अब पढ़े जाने लगे हैं।

आत्मनिष्ठ विज्ञान

जो विज्ञान योग और कषाय से परे है, कर्म से निरपेक्ष है, उसका विधान, उसकी अभिव्यक्ति जटिल होते हुए भी सहज है। जिन परिणामों में सहज रूप से बहा जा सकता है ऐसे परिणामिक भाव का गूढ़तम रहस्य जान लेना इसलिये कल्याणप्रद सिद्ध हो सकता है कि उसका सम्बन्ध पाँचवीं लब्धि के करणत्रय (त्रिकरण) से होना चाहिए, जिनमें अनंतानुबंधी कषायों, नो कषायों को विसंयोजित करने की क्षमता होती है और जिनमें मिथ्यात्व को त्रिभाग में विभक्त कर अंततः पूर्ण रूप से क्षय करने की क्षमता होती है। इस तंत्र को, रहस्य को विज्ञान से परे नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इसमें कर्म-निरपेक्ष परिणामों की गणितीय मात्रात्मक एवं शक्त्यात्मक धाराओं का अगम्य एवं अपूर्व तथा निश्चल प्रवाह है।

प्रयोग करने से पूर्व हमें निश्चित करना है कि क्या अधः प्रवृत्त परिणामों, अपूर्वकरण परिणामों एवं अनिवृत्तिकरण परिणामों की अटूट, अंतमुहूर्तों से बंधी, उत्तरोत्तर श्रृंखलाबद्ध प्रक्रियाएँ हमारे कर्म निरपेक्ष जीवत्व एवं भव्यत्व पारिणामिक भावों से जुड़ी हैं अथवा नहीं ? क्या हम उनका अनुमान लगा सकते हैं कि कब और कहाँ हमें बहाये ले जा रहे हैं वे परिणाम जिनके बिना हमारा सांसारिक पिंजड़े का दरवाजा खुल न सकेगा ? क्या वे परिणाम मन में होते हैं अथवा उससे परे। यदि वे मन को या योगों को नियंत्रित कर विषयों से दूर ध्यान के आलम्बन में टिका देते हैं तो क्या वे जीवत्व और भव्यत्व पारिणामिक भावरूप ही होते हैं अथवा करणत्रय रूप अथवा अन्य रूप ?

उपर्युक्त के समाधान हेतु हम धवला टीका, पुस्तक 13 में से आवश्यक जानकारी लेते हुए गंतव्य तक पहुँचने का प्रयास करेंगे। [50] चरित्र में श्रुत प्रधान है अतः उसकी अग्र्य संज्ञा है, क्योंकि श्रुत ज्ञान के बिना चारित्र की उत्पत्ति नहीं होती। अथवा अग्र्य शब्द का अर्थ मोक्ष है। मार्ग, पथ और श्रुत ये एकार्थक नाम हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के अविनाभावी द्वादशांग को मोक्ष मार्ग रूप से स्वीकार किया है। (ध. 13, पृ 288)। जीव द्रव्य का ज्ञान-दर्शन आदि रूप से होने वाला उसका परिणाम उसकी सद्भाव क्रिया है। पुद्गल द्रव्य का वर्ण, गंध, रस और स्पर्श विशेष रूप से होने वाला परिणाम उसकी सद्भाव क्रिया है। जीव का मन के साथ प्रयोग, वचन के साथ प्रयोग और काय के साथ प्रयोग होता है। उसमें भी वह क्रम से ही होता है अक्रम से नहीं। सत्य, असत्य, उभय, अनुभय भेद से मनः प्रयोग और वचन प्रयोग चार-चार प्रकार के हैं तथा काय प्रयोग सात प्रकार का है। कार्मण पुद्गलों का मिथ्यात्व, असंयम, योग और कषाय के निमित्त से आठ कर्म रूप, सात कर्म रूप या छह कर्म रूप भेद करना समवदानता है। कार्मण वर्गणा स्कन्ध अकर्म रूप से स्थित हैं वे मिथ्यात्व कारणों का निमित्त पाकर अन्य परिणामों को न प्राप्त होकर अनन्तर समय में ही आठ कर्म रूप से, सात कर्म रूप से या छह कर्म रूप से परिणत होकर गृहीत होते हैं। यह

सभी बंध, उदय और सत्ता के भेद से अनेक प्रकार का कर्म समवदान कर्म है। जिस शरीर में स्थित जीवों के उपद्रावण, विद्रावण, परितापन और आरम्भ अन्य के निमित्त से होते हैं वह शरीर अध: कर्म है। ईर्या का अर्थ योग है। योग मात्र के कारण जो कर्म बंधता है वह ईर्यापथ कर्म है। (ध. 13 पृ. 45 आदि)। जो कषाय का अभाव होने से स्थिति बन्ध के अयोग्य है, कर्मरूप से परिणत होने के दूसरे समय में ही अकर्मभाव को प्राप्त हो जाता है, और स्थिति बन्ध न होने से मात्र एक समय तक विद्यमान रहता है, अत: ईर्यापथ कर्म अल्प है। यहाँ कषाय का अभाव होने से जघन्य अनुभाग स्थान के जघन्य स्पर्धक से अनन्त गुणेहीन अनुभाग से युक्त कर्मस्कन्ध बंध को प्राप्त होने से अनुभाग बंध नहीं है—ऐसा कहा जाता है। ईर्यापथ कर्मस्कन्ध रुक्ष है, क्योंकि पुद्गल प्रदेशों में चिरकाल तक अवस्थान का कारण स्निग्ध गुण का प्रतिपक्ष गुण उसमें स्वीकार किया गया है। यहाँ द्वयधिक गुण वाले रुक्ष गुणवालों का बंध पाया जाता है। लोक में जो काम सुख है और जो दिव्य महासुख हैं, वह वीतराग सुख के अनन्तवें भाग के योग भी नहीं हैं। तीन रत्नों को प्रकट करने के लिए इच्छा निरोध को तप कहते हैं। तप: कर्म आभ्यन्तर और बाह्य के भेद से बारह प्रकार का है।

जीव का लक्षण उपयोग जो साकारोपयोग और अनाकारोपयोग रूप है। साकार उपयोग का नाम ज्ञान जिसे आवरण करने वाला कर्म ज्ञानवरणीय है तथा साकार उपयोग से अन्य अनाकार उपयोग का नाम दर्शन है। कर्म - कर्तृभाव का नाम आकार है। उसका आकार के साथ जो उपयोग रहता है उसका नाम साकार है। अंतरंग को विषय करने वाले उपयोग को अनाकार उपयोग रूप से स्वीकार किया है। अन्तरंग उपयोग विषयाकार होता है यह भी बात नहीं है क्योंकि इसमें कर्त्ता द्रव्य से पृथग्भूत कर्म नहीं पाया जाता। एक बहिरंग अर्थ को विषय करता है और दूसरा अंतरंग अर्थ को।

(ध. 13, पृ. 206 आदि)

अभिमुख और अनियमित अर्थ का ज्ञान होना अभिनिबोधक ज्ञान है। इन्द्रिय और नोइन्द्रिय के द्वारा ग्रहण करने योग्य अर्थ का नाम अभिमुख है। अर्थ, इन्द्रिय, आलोक और उपयोग के द्वारा ही मनुष्यों के रूप ज्ञान की उत्पत्ति होती है। अर्थ, इन्द्रिय और उपयोग के द्वारा ही रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श ज्ञान की उत्पत्ति होती है। दृष्ट, श्रुत और अनुभूत अर्थ तथा मन के द्वारा नोइन्द्रिय ज्ञान की उत्पत्ति होती है—यह यहाँ नियम है। इस नियम के अनुसार अभिमुख अर्थों का जो ज्ञान होता है वह अभिनिबोधक ज्ञान है और उसका आवारक कर्म आभिनिबोधिक ज्ञानवरणीय है। मतिज्ञान के द्वारा ग्रहण किये गये अर्थ के निमित्त से जो अन्य अर्थों का ज्ञान होता है वह श्रुत ज्ञान है। मतिज्ञान पूर्वक श्रुत ज्ञान होता है। कारण में कार्य के उपचार से शब्द को भी श्रुत कहते हें। एकेन्द्रिय जीव श्रोत्र और नोइन्द्रिय से रहित होने पर भी जाति विशेष के कारण लिंगी विषयक ज्ञान की उत्पत्ति उनमें हो जाती है। इस श्रुत का आवारक श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म है।

(ध. 13, पृ. 210)

इनके अनेक भेद अगली गाथाओं में तथा तत्त्वार्थसूत्र में भी उपलब्ध हैं। मतिज्ञान के क्रमशः 4, 24, 28, 32, 48, 144, 168, 192, 228, 336 और 384 विकल्प होते हैं। इसी प्राकर श्रुत ज्ञान में 64 वर्णाक्षरों द्वारा (2) (64-1) भंग प्राप्त होते हैं। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान मिलकर आज के मनोविज्ञान को चित्रित कर देते हैं—विशेष विवरण धवलादि टीकाओं में उपलब्ध हैं।

अब हम देखेंगे कि वस्तुतः पाँचवीं लब्धि के करणत्रय मिथ्यात्वादि को मिटाने के लिए ध्यान का ही आलम्बन लेते होंगे यद्यपि वह प्रारम्भ में मिथ्यात्व के न मिटने तक धर्म ध्यान की संज्ञा को प्राप्त नहीं होता होगा। तीन प्रकार के अंतर्मुहूर्तों में तीन प्रकार की वृद्धिगत निर्मलता की ऐसी बाढ़ें आती होंगी जो मात्रा में प्रति समय असंख्यात गुणी और शक्ति में अनन्तगुणी बढ़ती हुई होंगी। अतः पहले हमें ध्यान के तंत्र को समझना होगा उसके पश्चात् दर्शन मोह के उपशम और क्षपणा को। शेष फिर बहुत सहज हो जाता है क्योंकि रास्ता प्रकाशमय हो जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि अनन्तानुबंधी कषाय नोकषाय को विसंयोजित करते ही उत्तम क्षमादि को ध्यान में लाया जाता है जो आगे जाकर धर्मध्यान का रूप उन्हीं करणादि स्वरूपको लिए हुए रहते होंगे। इसे धर्मध्यान का पूर्ववर्ती ध्यान कहा जा सकता है। परिस्पन्द से रहित जो एकाग्र चिंता का निरोध है उसका नाम ध्यान है और वह निर्जरा तथा संवर का कारण है। 'एक' प्रधान को और अग्र आलम्बन को तथा मुख को कहते हैं। 'चिंता' स्मृति का नाम है और 'निरोध' उस चिंता का उसी एकाग्र विषय में वर्तन का नाम है। द्रव्य और पर्याय के मध्य में प्रधानता से जिसे विवक्षित किया जाय उसमें चिंता का जो निरोध है, वह ध्यान है। ज्ञान ही वस्तुतः व्यग्र होता है और ध्यान एकाग्र। विशुद्ध बुद्धि और एक आलम्बन कार्यकारी होता है। वह विशुद्ध आत्मा अग्र है। द्रव्यार्थिक नय से 'एक' केवल असहाय या शुद्ध का वाचक है, चिंता अन्तःकरण की वृत्ति है और 'रोध' नाम नियंत्रण का है। 'निरोध' अर्थात् अभाव। चिंता से रहित स्वसंवित्ति रूप है। वही ध्यान है और स्व संवेदन रूप है। श्रुतज्ञान जो उदासीन है, यथार्थ है, अत्यन्त स्थिर है, वह भी अंतर्मुहूर्त पर्यन्त रहकर ध्यान बन जाता है। चूंकि आत्मा अपने आत्मा को अपने आत्मा में अपने आत्मा के द्वारा अपने आत्मा के लिए अपने आत्म हेतु से ध्याता है, अतः षट्कारक रूप परिणत आत्मा ही ध्यानस्वरूप है। परिग्रहों का त्याग, कषायों का निग्रह, व्रतों का धारण तथा मन और इंद्रियों का जीतना—ध्यान की उत्पत्ति में सहायक हैं। [51]

ध्यान के इस विज्ञान के सिवाय धवल पु. 13 से पृ. 64 से आगे और भी महत्त्वपूर्ण बातें दृष्टव्य हैं। जो उत्तम संहनन वाला, निसर्ग से बलशाली, निसर्ग से शूर, चौदह पूर्वों को धारण करने वाला या नौ दस पूर्वों को धारण करने वाला होता है, वह ध्याता है, क्योंकि इतना ज्ञान हुए बिना जिसने नौ पदार्थों को भले प्रकार नहीं जाना है उसके ध्यान

की उत्पत्ति नहीं हो सकती है । इन्द्रियों को विषयों से हटाकर और मन को भी विषयों से दूर कर समाधिपर्वूक उस मन को अपनी विशुद्ध आत्मा के ध्यान में लगाना चाहिये । इत्यादि । करण लब्धि सम्बन्धी विवरण कसायपाहुड़, जयधवला, लब्धिसारादि ग्रन्थों से भलीभांति ज्ञातव्य है । उसे ध्यान में रखकर इस विज्ञान को बहुत आगे तक विकसित किया जा सकता है और प्रयोगों के फल को देखा जा सकता है । [52] धरसेनाचार्य से गुणधराचार्य का समय लगभग 200 वर्ष पूर्व प्रतीत होता है जिनके कसायपाहुडसुत्त पर वीर सेनाचार्य एवं जिनसेनाचार्य द्वारा जयधवल टीका नवीं सदी में निर्मित की गई । इसका दसवाँ अध्याय सम्मत्त-अत्थाहियारो (सम्यक्त्व-अर्थाधिकार) है जिन पर यतिवृषभाचार्य के चूर्णिसूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । इनमें तीनों करणों के लक्षणों का विवेचन है । वह विशुद्धि के गणितीय रूप को लेकर है । जैन धर्म में , इस प्रकार दर्शन-मोह के उपशमन में विशुद्धि के विचरण (Variation) की भूमिका प्रधानतम है, श्रेणियों में विभक्त है, **मात्रा** और **शक्ति** के गण्य है । मात्रा का आधार **असंख्यात लोक** प्रमाण को लेकर है ओर शक्ति का आधार **अनन्त गुणकार** को लेकर है । विशुद्धि का विचरण प्रति निर्वगणाकाण्डक का आधार लेकर है । जितने काल आगे जाकर निरुद्धया विवक्षित समय के परिणामों को अनुकृष्टि विच्छिन्न हो जाती है, उसे निर्वगणाकांडक कहते हैं । करणों के इन विशुद्धि विचरण के समीकरण आधुनिक मैट्रिक्स-कलन या टेन्सरादि-कलन रूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं; आपरेटर, आपरेण्ड एवं ट्रांस्फार्म रूप में स्थापित कर गहन अध्ययन का विषय बन जाते हें । (कसायपाहुडसुत्त 91-109, कलकत्ता) । यहां गणितीय विशद स्वरूप के दिये निर्देश एवं टिप्पणी 8 देखिये । इसके द्रव्य श्रुत के संरक्षण एवं प्रसारण हेतु अब जागृत होना श्रेयस्कर होगा । यहाँ तक लब्धिसार का विषय है और आगे क्षपणासार का । इसी प्रकार चारित्र मोह की उपशामना और क्षपणा के अर्थाधिकारों के अध्ययन इन्हीं करणत्रय को आधारभूत लेकर हैं । मोह के क्षपण में कार्यकारी ऐसे विशुद्धि रूप परिणाम ही जैन धर्म के प्राण हैं जिनके फलस्वरूप क्षायिक सम्यक्त्व रूप लब्धि और केवल ज्ञान रूप क्षायिक लब्धि प्राप्त होती है । अत: विशुद्धि का लक्षण करण लब्धि में कैसी प्रतीति देता है यह जीव स्वयं में पहिचान ले यही जीवन की अमोल सार्थकता है, अन्य से परे, अत्यन्त परे । योग्यता हेतु यही शृंखलाबद्ध प्रक्रिया को सार्थक बनाने में निमित्त रूप है ।

उपसंहार

"ज्ञान समान न आन जगत में सुख का कारन", अथवा
"कोटि वर्ष तप तपैं ज्ञान बिन कर्म खिरैंजे,
ज्ञानी के क्षिण मांहि त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं जे"

उपरोक्त पंक्तियाँ वस्तुत: उसी संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य की ओर इंगित करती हैं जो पर वस्तु, द्रव्य या भाव में रमणता को मिथ्यात्व संज्ञा देता है। पर से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध जोड़ते ही ध्रुवीकरण की स्थिति आती है और उसे ढोने वाली कषाय अंतत: टकराहट का कारण बनती ही है। अत: स्व में रमणता सम्यक्त्व की संज्ञा पा जाती है। स्व अर्थात् ज्ञान स्वभाव जो हर तरह से आत्मा से ही संबंधित है। निश्चित ही सम्यक्त्वी जीव असहाय पराक्रम को प्राप्त होता है, और उसके साथ-साथ उसका समाज, उसका देश या जो भी उसके संपर्क में आते हैं एक अद्वितीय आत्मीयता अपनी ही आत्मा से स्थापित करते चले जाते हैं—मानो एक तीर्थ का ही निर्माण कर लेते हों जिसे वीतराग विज्ञान से प्राप्त सुफल कहा जा सकता है। स्व का असहाय पराक्रम जिसे पर्यावरण, जिसे परिस्थिति, जिसे विज्ञान की कला, जिसे कला का विज्ञान या तंत्र उत्पन्न करता चला जाता है, वह भी कालवश अंतत: रहस्यों के अंधेरों में विलुप्त होता चला जाता है। फिर फिर ज्ञान सूर्य के उदय होते हैं, शीतलता के चंद्रोदय होते हैं, रात्रियों के तारे सितारे उदय होते हैं, समुद्रों में ज्वार भाटे आते हैं, नदियों में बाढ़ें, सुखों और दुखों के साये, आदि, किन्तु जब यह जीव अपने ही किनारे पर आ लगता है, अपने ही स्रोत में लीन हो जाता है, तब बाह्य वस्तुएँ उसके लिए कोई मायना नहीं रखती हैं और न उनके कोई सम्बन्ध या स्मृतियाँ या अभिनिबोधताएँ। उसका भावश्रुत ज्ञान ही असीम होता चला जाता है, ज्ञान राशियों में ज्ञेय राशियाँ बिना किसी सम्बन्ध के उतरती चली जाती हैं—यही ज्ञान का माहात्म्य है। यही वैज्ञानिकता है जो जैन धर्म ने पुन: पुन: अवतरित की हैं, की थीं और करता रहेगा—वह जाति, पांति, संबंध, पक्षपात, भाई-भतीजावाद, राजनीति, समाजनीति आदि जकड़ने वाले सभी बंधनों से परे भूमिका निभाता रहा है, अपने दोषों को बिना छुपाये, ऋजुता से उघाड़कर क्षमा की असीम ऊंचाइयों तक पहुँचाता रहा है, और निश्चित है कि तुच्छ से तुच्छ जीव जन्तुओं से भी, बैरियों से भी समता का पाठ सिखाता रहा है। यही उसकी वैज्ञानिकता है। उसने व्यक्ति के, समाज के, देश के, राज्य के, साम्राज्य के, लोक के, परलोक के मनो विज्ञानों, वचन-विज्ञानों, काय-विज्ञानों तथा काषायिक विज्ञानों की थाह ली है और वर्तमान की ज्ञानादि की सीमाओं को प्रतिपक्ष रुढ़िवाद से हटकर, बढ़ाया ही है, घटाया नहीं। संकुचित किया नहीं। मुख मोड़ा नहीं।

शाकाहार के अभियान चल पड़े हैं, जिसमें तीर्थंकर, अर्हत् वचन, णाणसायर, जैनमित्र आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने, जैन समाज ने, खुले मन और खुले हृदय से इसमें भाग लेना प्रारम्भ किया है। किन्तु स्मरण रहे कि जैन, सूखी सब्जियों आदि पर ही श्रद्धा रखते रहे हैं—जैसे गेहूँ, अक्षत, दाल आदि। फल फलों, आदि का भी निषेध, जड़ रूप वनस्पति आदि निगोद जीव के निवास वाले कंदादि, बड़, ऊमर, कठूमर आदि का भी त्याग करते रहे हैं। अत: विकल रूप से यह अभियान नियंत्रण भी चाहता है और देखें कि सूखने पर कौने से दीर्घायु और स्वास्थ्यप्रद तत्त्व आ जाते हैं जो सचित्त सब्जियों में नहीं होते हैं। सचित्त सब्जियों में एकेन्द्रिय जीव तो हैं ही, साथ ही अनेकेन्द्रिय जीव भी हो सकते हैं जो स्वास्थ्य के लिए, धर्म के लिए हानिकर सिद्ध हो सकते हैं। मांसाहार तो पूर्णत: हर रूप में मद्य मधु के साथ तो वर्जित हैं ही, क्योंकि उसमें सदैव त्रसकाय के जीवों की उत्पत्ति मानी जाती है। इसी वैज्ञानिकता को लिए जैन धर्म ने पड़ोस, समाज, राष्ट्र, विदेश सभी को प्रभावित किया है। समाज विज्ञान यही है जिसने सदैव जीव हित में ही कार्य किया है। [53] राजनीति विज्ञान, अर्थनीति विज्ञान, भैषज विज्ञान, यांत्रिकी विज्ञान, समस्त कला विज्ञान आदि में इसी जन कल्याण, जीव मात्र कल्याण् की भावना ओतप्रोत रही है। यही वैशिष्ट्य है जैन धर्म एवं उसके दर्शन में निहित वैज्ञानिकता का। जगदीशचन्द्र बसु ने एकेन्द्रिय जीवों की संवेदना मापक यंत्र बनाकर पूरे विश्व को विचलित कर दिया। [54] यह एक ऐसा आविष्कार था जो करोड़ों आविष्कारों के तुल्य था कि जीव पीड़ा को परखा जाय और उससे परहेज किया जाये, और त्याग की ऐसी वैज्ञानिकता ही मांसाहार, शाकाहार से दूर एक ऐसे अमोघ वर्ष की सृष्टि में ले जा सकती है जहाँ बिना परपीड़ा के आहार स्वमेव बन जाता हो, प्राप्त हो जाता हो, जिसे भोग भूमि या स्वर्ग स्थल कहा जाता हो, या रामराज्य ही कहा जाता हो। जैन धर्म में ध्यान की उत्कृष्टता चौदह पूर्व या दस या नौ पूर्व तक के श्रुत को ही दी है, अत: यदि व्यक्ति इन पूर्वों के छुपे रहस्यों को उद्घाटित करता है, शोध करता है, तो वह ऐसी भोग भूमि या स्वर्ग या अंतत: स्वातंत्र्य, मुक्ति, मोक्ष के परिणाम तक पहुँच सकता है, अपने पदचिह्न छोड़ सकता है, जैसा कि शलाका पुरुष करते आये हैं तथा तीर्थंकर, अवतार आदि करते आये हैं। विज्ञान एक ऐसा संतुलन सिखाता है, यदि उसकी कषाय या मिथ्यात्व वश उपेक्षा न की जाये, कि उसके द्वारा अहिंसात्मक ढंग से जीवन बिताया जा सकता है, कर्मोदय होते हुए भी ऐसे परिणामों में स्थिर किया जा सकता है जहाँ भोग भूमियों और स्वर्गों से भी अनन्त गुणे आनन्द को प्राप्त कराया जा सकता है—वहीं स्वतंत्रता के लिए कदम बढ़ते हुए होते हैं और चिर, अनन्त शांति सुख, अनन्त बल के साथ निवास करते हैं। संवेग और निर्वेद विज्ञान की प्राप्ति होते ही ध्यान की पराकाष्ठा तक पहुँचा जा सकता है। वही ध्यान, जो धर्म या शुक्ल है उत्तरोत्तर उन ऊँचाइयों तक ले जा सकता है जहाँ स्वतन्त्रता का चरम केन्द्र बिन्दु होता है।

निर्देश एवं टिप्पणी

1. Rice, L.L., The Universe : Its Origin, Nature and Destiny, 1951, New York. पुनः, लक्ष्मीचन्द्र जैन, जैन धर्म बनाम विश्वधर्म, अर्हत् वचन, 2.1, 1989, 13-19. साथ ही देखिये Tokarev, S., History of Religion, Moscow, 1989.
2. Einstein, A., Ideas and Opinions, Calcutta, 1979, p. 46.
3. वही, पृ. 50
4. वही, पृ. 50
5. सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाश चन्द्र, जैन साहित्य का इतिहास, पूर्व पीठिका, वाराणसी, वी.सं. 2489,
6. वही ।
7. वही, प्रथमभाग, वी.सं. 2502. साथ ही देखिये, शास्त्री, नेमिचन्द्र, तीर्थंकर महावीर और उनकी परम्परा, सागर, 1974, भाग 2.

इस सम्बन्ध में निम्नलिखित शोध पत्र देखिये—

. जैन, लक्ष्मीचन्द्र, हीनाक्षरी और घनाक्षरी का रहस्य (गिरिनगर की चन्द्रगुफा में), अर्हत् वचन, 1.2, 1988, 11-16
. "" ब्राह्मी लिपि का आविष्कार एवं आचार्य भद्रबाहु मुनिसंघ, अर्हत् वचन, 2.2, 1990, 17-26; 2.3, 1990, 1-12.
. " " क्या सम्राट् चन्द्रगुप्त दक्षिण भारत में मुनि रूप में ब्राह्मी लिपि के आविष्कार में सहयोगी हुए ? (सहलेखक-कु.प्रभा जैन), अर्हत् वचन, 4.1, 1992, 13-20; 4.4 1992; 12-20; 5.3, 1993; 155-171.
. " " क्या सम्राट् चन्द्रगुप्त दक्षिण भारत में आचार्य भद्रबाहु के समीप बाह्मी लिपि के आविष्कार में सहयोगी हुए ? महावीर जयन्ती स्मारिका, अप्रेल 1992/3, जयपुर, 1-6.
. जैन, लक्ष्मीचन्द्र, प्राकृत ग्रन्थों की कतिपय गणितीय अंतर्वस्तुएँ तथा उनकी ऐतिहासिक भाषाविज्ञान एवं पुरालिपि विज्ञान में भूमिका, अर्हत् वचन 6.2, 1994, 97-101

8. Jain, L.C., The Labdhisara of Nenicandra Siddhantachakravarti,

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, कैथून

Indian National Sience Academy Project, New Delhi, 1984-1987. (4 vols.). Volume I has recently been published at Katni.

" ", The Tao of Jaina Sciences (With Ku. Prabha Jain), Delhi, 1992.

" ", The Jaina Schools of Mathematical Sciences, Arhat Vacana, 4 (2-3), 1992, 95-101

" " System Theory in Jaina School of Mathematics, I.J.H.S., I-14.1, 1979, 29-63; II-(With Ku Meena Jain) I.J.H.S., 24.3, 1989, 163-180

9.. Jain, L.C., Divergent Sequences Locating Transfinite 'Sets in Trilokasara, I.J.H.S., 12.1, 1977, 57-75.

" ", On Certain Mathematical Topics of the Dhavala Texts, I.J.H.S., 11.2, 1976, 85-111.

10 . Suppes, P.,Axiomatic Set Theory, Princeton, 1961.

Halmos, P.R., Naive Set Theory, Princeton, 1963.

Wider, R.L., Introduction to Foundations of Mathematics, Tokyo, 1952.

Hausdorff, F., Set Theory, New York, 1962,

11. धवला टीका, पु . 3. पृ. 30. और भी देखिये—

Jain, L.C., Set Theory in Jaina School of Mathematics, I.J.H.S. 8.1, 1973, 1-27.

"" On the Jaina School of Mathematics, Chhote Lal Smriti Grantha, Calcutta, 1967, 226-292.

12. धवलादि टीकाएँ इस सामग्री से स्थान-स्थान पर भरी पड़ी हैं । इनसे कितना लाभ हो सकेगा, इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दृष्टव्य हैं—

Haar, D.T., Elements of Hamiltonian Mechanics, Oxford, 1971.

Lyusternik, L.A., The ShortestLines; Variational Problems, Moscow, 1976.

13. Jain, L.C., The Jaina Ulterior Motive of Mathematical Philosophy, Astha aura Cintana, Section on Jaina Pracya Vidyaem, (आचार्य श्री देशभूषण अभिनन्दन ग्रन्थ), Delhi, 1987, 48-59

Jain, L.C., On Analytical Treatment of Transfinite Numbers in Dhavala, Chainsukhdas Nyaya tirth Smriti Grantha, Jaipur, 1976, pp. 173-188.

14. धवला टीका समन्वित : षट्खण्डागम, पु. 3, सं.डा. हीरालाल जैन अमरावती, 1941, पृ. 15 आदि ।

लक्ष्मी चन्द्र जैन, गोम्म्टसार ग्रन्थों की गणितात्मक प्रणाली, (परिशिष्ट), गोम्मटसार कर्मकाण्ड, भाग 2, ऐ. आ. उपाध्ये, के. शास्त्री, दिल्ली, 1981, पृ. 1397-1436.

15. वही, पृ. 6, साथ ही देखिये—

लक्ष्मीचन्द्र जैन, जैनाचार्यों द्वारा कर्म सिद्धान्त के गणित का विकास, आचार्य धर्मसागर अभिनन्दन ग्रन्थ, कलकत्ता, 1982, पृ. 663-672.

मनोहरवर्णी, सहजानन्द "सप्तभंगी तरंगिणी प्रवचन", सदर मेरठ, 1964

16. Haldane, J.B.S., The Syadvada System of Predication, Samkhya, The Ind. Jour. Statis., vol. 18, 1956, 195-200.

Mahalanobis, P.C., The Foundations of Statistics, Dialectics, vol. 8, no. 2, 1954, 183-193.

17. भारिल्ल, हुकुमचंद, क्रमबद्ध पर्याय, जयपुर, 1980

Zlot, W.L., Some Comments on the Role of Axiom of Choice in the Development of Abstract Set Theory, Mathematics Magazine, 1959, 115-122.

" ", The Principle of Choice in Pre-Axiomatic Set Theory, Scripta Mathmatica, vol.XXV, no 2, 105-123, 1960.

" " The Role of the Axiom of Choice in the Development of the Abstract Theory of Sets, Lib. of Congress, No. Mic 57-2764 (Doct. Thesis,) Columbia University, 1957.

18. गेत्मा नोवा, अ., तर्कशास्त्र, मास्को, 1990

बारलिंगे, सु., तर्करेखा, जयपुर, 1972

मिश्र, र., आधुनिक तर्कशास्त्र, जयपुर, 1976,

जैन न्याय, कै. शास्त्री भाग 1, वाराणसी, 1966

शास्त्री, कै., जैन न्याय, भाग 2, वाराणसी, 1989

मुनि नथमल आचार्य, जैन न्याय का विकास, जयपुर, 1977

Hughes, G.E.; Lindey, D.G., The elements of formal Logic, Bombay, 1966.

19. मनोहर वर्णी "सहजानन्द", समयसार, सप्तदशांगी टीका, मेरठ, 1977

" " : प्रवचनसार, सप्तदशांगी टीका, मेरठ, 1979

20. बारलिंगे, सु., भारतीय तर्कशास्त्र की रूपरेखा, जयपुर, 1976

21. जैन, लक्ष्मीचन्द्र प्रस्तावना, गणितसार-संग्रह, पृ. 1-34, शोलापुर, 1963.

" ", तिलोयपण्णत्ती का गणित, प्रस्तावना जम्बूदीपपण्णत्ती-संगहो, पृ.1-109, शोलापुर 1958.

" ", लोकोत्तर गणित विज्ञान के शोध पथ, भिक्षु स्मृति ग्रंथ, कलकत्ता, 1961, पृ. 222-231.

Jain, L.C., Principle of Relativity in Jaina School of Mathematics, Tulsi Prajna, JVB, Ladnun, 1976.

22. Tarasov, L., The World is Built on Probability : Moscow, 1988.

Price, W.C. and Chissick, s.s., The uncertainty Principle and Foundations of Ouantum Mechanics. Landon, 1977.

Harman, P.M., Metaphysics and Natural Philosophy, Sussex, 1982.

23. Bethe, H.A., From a Life of Physics, Singapore, 1989.

Gupta R.C. पाई (II) का जैन मान और विदेशों से उसका प्रचार, अर्हत् वचन, 117-120.

" " An Ancient Approximate Rule for the Area of a polygon, Ganita Bharati, 12.3-4, 1990, 108-112.

" " Introduction on Jaina Mathematics, viii-xvi, Ganita Bharati, 12, 1990.

Takao Hayashi, Mahavira's Formulas for a Conch like plane figure, Ganita Bharati, 14. 1-4 (1994) 1-10

Takao Hayashi, etal, Indian Values for II Derived from Aryabhata

Value, Historia **Scientiorum**, No. 37 (1989). 1-15.

. Gupta, R.C., Rectification of Ellipse from Mahavira to Ramanujan, Ganita-Bharati, 15. 1-4 (1993), 14-40

24. त्रिलोकसार, आ. विशुद्धमती (टीकाकर्त्री) श्री महावीरजी, 1976

तिलोयपण्णत्ती, आ. विशुद्धमती (टीकाकर्त्री), भाग 1, 2, 3, 1984-1986-1988, लखनऊ

25. आ. ज्ञानमती, जैन ज्योतिर्लोक, हस्तिनापुर, 1973. हस्तिनापुर में निर्मित "जम्बूद्वीप" का माडेल उनकी प्रेरणा से निर्मित हुआ था जिसमें यांत्रिकों ने "तिलोयपण्णत्ति का गणित" से जानकारी प्राप्त की थी। देखिये नि. 21 (2).

26. देखिये नि. 15, साथ ही देखिये

Jain, L.C.[Perspectives of System Theoretic Technique in Jaina School of Mathematics between 1400-1800 A.D., Jain Journal, Calcutta, 13.2 (1978), 49-66

. Jain, L.C. & Jain, A., Mathematical Contents of Certain Digambara Jaina Texts, Arhat Vacana, 6.2 (1994), 19-24

. जैन, लक्ष्मीचन्द्र, आगमों में गणितीय सामग्री तथा उसका मूल्यांकन, तुलसी-प्रज्ञा, खण्ड 6, अंक 9, 1980, 35-69

27.

. S.S. Lishk, Jaina Astronomy, Delhi, 1987

. Jain, L.C., On certain Physical Theories in Jaina Astronomy, The Jaina Antiquary, 29.1-2, 1976, 118-123

. "", Exact Sciences from Jaina Sources, vol. 2, Astronomy and Cosmology, Jaipur, 1983

. जैन, लक्ष्मी चन्द्र, तिलोयपण्णत्ती और उसका गणित, प्रस्तावना ति.प. भाग 1-3, आ. विशुद्धमती, लखनऊ, 1984-86-88.

. " ", आचार्य, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की खगोल विद्या एवं गणित सम्बन्धी मान्यताएँ-आधुनिक संदर्भ में, अर्हत् वचन, vol. 1, 1988, पृ. 75-90.

. जैन, लक्ष्मी चन्द्र, आचार्य श्री कुन्दकुन्दकालीन दक्षिण भारतीय दिगम्बर जैन गणित एवं ज्योतिष, इण्डियन जर्नल ऑफ मेथामेटिक्स एजुकेशन, 11.4,

1992, दिल्ली, 173-180.

. Jain, C.K., The Jaina Geography, The Digamabra Jaina Jambudvipa and the Modern Context, Arhat Vacana, 13.4, 1989, 19-20.

28. जैन, लक्ष्मीचन्द्र, प्रस्तावना, गणितानुयोग (सं. कन्हैयालाल 'कमल'), अहमदाबाद, 1986, पृ. 9-76.

29. देखिये नि. 21, 27.

Jain, L.C., Aryabhata-I and Yativrsabha, A Study in Kalpa and Meru; I.J.H.S. 12.2, 1977, 135-149.

30. Das, S.R., The Jaina Calendar, Jaina Antiquary, 3.2, 1951.

. Lishk, s.s., Jaina Astronomy, Delhi, 1987.

. सूर्यप्रज्ञप्ति, अनु. अमोलक ऋषि, सिकन्दराबाद, 1920.

. चंद्रप्रज्ञप्ति सूत्र, अनु. "", 1920

. सूर्यप्रज्ञप्ति, मलयगिरि टीका, ह.लि. 619; चंद्रप्रज्ञप्ति, मलयगिरि टीका, ह.लि. 113, आत्माराम जैन भंडार, अम्बाला।

31. Jain, L.C., Kinematics of the Sun and the Moon in Tiloyapannatti, Tulsi Prajna 1.1., Feb. 1975, 60-67

. "" The Kinematic motion of of Astral Real and Counter Bodies in Trilokasara, I.J.H.S., Calcutta, 11.1, 1975, 58-74.

. "", On probable Spiro-elliptie Motion of the Sum Implicit in the Tiloyaponnatti, I.J.H.S., 13.1, 1978, 42-49

32. Sikdar, J.C., Concept of Matter in Jaina Philosophy, Varanasi, 1987.

33. .नि. 8 देखिये। साथ ही,

Jain, L.C., Mathematical Foundations of Karma : Quantum system theory, J.V.B., Anusandhana Patrika, Ladnun, 1973, 1-19 (Oct.-Dec.)

Jain, L.C., The Jaina Theory of Ultimate Particles, in जैन दर्शन एवं संस्कृति (आधुनिक संदर्भ में), Indore University, 1976, 43-45.

. Jain, L.C., On Contribution of Jainology to Indian Karma Structures, Tulsi Prajna, 7.56, 1981, 1-11.

34. गोम्मटसार जीवकांड, सं. आ. उपाध्ये एवं कै. शास्त्री, भाग 1-2, 1978-1979, दिल्ली।

35. देखिये नि. 32, पृ. 202-220

36. देखिये, नि. 34, साथ ही गोम्मटरसार-मंद प्रबोधिनी, जीवतत्त्व-प्रदीपिका एवं सम्यक् ज्ञानचंद्रिका टीका सहित, जी.एल् जैन एवं एस.एल.जैन द्वारा संपादित, कलकत्ता, 1919, के अर्थसंदृष्टि अधिकार जीवकाण्ड।

37. लब्धिसार/क्षपणासार गर्भित, सं. फूलचंद्र सिद्धान्तशास्त्री, अगास, 1980। कलकत्ता से भी 1919 में यही ग्रंथ प्रकाशित हुआ, जिसमें अर्थ संदृष्टि अधिकार भी दिया गया है।

38. देखिये नि. 36 एवं नि. 37

39. देखिये लब्धिसार, इंडियन नेशनल साइंस अकादमी प्रोजेक्ट, एल.सी.जैन, 1984-87, जो आधुनिक संदृष्टियों में अंग्रेजी में तैयार की गयी है।

40. वही।

41. भटनागर, रा., जैन आयुर्वेद साहित्य, जैन विद्या का - एक मूल्यांकन, सांस्कृतिक अवदान में सं. रा.च. द्विवेदी एवं प्रे. सु. जैन, दिल्ली, 1976, पृ. 66-75.

ऐतिहासिक आदि एवं विज्ञान विषयक सूचना के लिए देखिये,

42. जैन, एच.सी., जैन आयुर्वेद का ऐतिहासिक पक्ष, अर्हत् वचन, 5.4, 1993, 253-259.

. जैन, रा.कु., जैन धर्म और आयुर्वेद, वही, 5.2, 1993, 93-96. उपर्युक्त में मुख्यत: धर्म का आधार लिया गया है।

. अगरचंद नाहटा एवं नेमिचंद्र शास्त्री के आयुर्वेद संबंधी लेख, जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा

43. गणितसारसंग्रह, महावीराचार्य, अ.सं. लक्ष्मीचंद्र जैन, शोलापुर, 1963

44. जैन कला के विशद वर्णन हेतु देखिये—

. Smith, V., Jaina Stupa and other Antiquities from Mathura, Allahabad, 1901.

45. Shah, U.P., Studies in Jaina Art, Benaras, 1955.

. " ", Yaksha Workship in Early Jaina Litrature, J.O. Institute : III, 1953.

46. Sankalia, H.D., Jaina Temples from Devagadh fort, J.I.S.O.A., - IX, 1941.

. Khandgiri-Udayagiri Caves, (T.N.Ramchandran and C.L.Jain, Calcutta, 1951.)

47. Bhattacharya, B.C., Jaina Iconography, Lahore 1930.

. Jaiswal, K.P., Jaina Images of the Mauryan period, G.J.B.O.R.S. XXIII, 1937.

. Coomarswamy, A.K., Catalogue of Jaina Paintings and Manuscripts, Boston, 1920.

48. Motichandra, Jaina, Miniature Paintings from Western India, Ahmedabad, 1949.

. Brown, W.N., Descriptive and Illustrated Catalogue of Miniature Paintings of the Jaina Kalpasutra as executed in the Early Western Indian Style, Washington, 1934.

नोट : उपर्युक्त के सिवाय, निम्नलिखित भी कक्ष विषयक नवीन सामग्री दृष्टव्य

Singh, H.H., Jaina Temples of Western India, Varanasi, 1982.

. Homage to Shravana Belgola, Marg Pub., Saryu Doshi ed. Bombay 1981.

. The Iconic and the Narrative in Jaina Paintings, Ibid, Bombay, vol XXXVI, No. 3

. Masterpieces of Jaina Painting, Ibid., Bombay, 1985.

. Sivaramamurti, C., Panorama of Jaina Art, South India, New Delhi, 1983.

. Ghosh. A., Jaina Art and Arohitecture, Vol 1, 2, 3, New Delhi, 1974, 1975, 1975.

. Kumar, Ravi, The Jain Cosmology, Basel, 1981

अभिनवावधि में 1988 से लेकर 1994 तक जैन पुरातत्त्व एवं कला सम्बन्धी नवीनतम लेख अर्हत् वचन, इंदौर में उपलब्ध हैं।

49. जैन, अभय प्रकाश, जैन ग्रन्थों में प्रतिपादितवीणा, अर्हत्वचन, 5.4, 1993, 247-252

. Jain, A.P., Raga and their Time, Ibid, 4 (2,3), 1992, 111-114

. "", The Emergence of Drone in Indian Music as Depicted in Jaina Sources, Ibid., 4.1, 1992, 39-44

Transitive Elements of Music in Jaina Work, 3.4, 1991, 13-16.

Bajpai, K.D., Contribution of Jainism to Indian Art, Ibid, 3.3, 1991, 17-22. आयागपट्ट, थूहु, तोरण, कुंभ, माण्डविका, शीलदेवी, ग्रामदेवी, प्रतिमा, सर्वेतोभद्रिका, पुष्करिणी, आराम, विहार, पुण्य शाललोहिक कारक, सरस्वती, वेदिका, तोरणद्वार, पद्मासन, कायोत्सर्गमुद्रा, स्थिर एवं गतिशील चित्रक आदि,। सौंदर्य ओसिया, रणकपुर, गयारसपुर, कुम्भरिया, आबू वडनगर, श्रवणबेलगोल, मूडबिद्री आदि में द्रष्टव्य। शील प्रदर्शन। उपयोगिता दृष्टि। सौंदर्य कला भी। खजुराहो की शिखर शैली, महामण्डप, अंतराल, गर्भगृह, गरुड पर जैन देवी, अप्सरा, आदि में अद्वितीय विज्ञान।

50. धवला टीका समन्वित षट्खंडागम, पुस्तक 13, सं. हीरालाल जैन, भेलसा, 1955.

. ब्र. सुमनशास्त्री, जैन दर्शन, अध्यात्म/विज्ञान, अर्हत् वचन 4.2-3, 1992, 25-28

. मनोविज्ञान, ईतेल्सोन, त.प. इत्यादि, मास्को, 1986, 1990.

Makarov, I.M., ed., Cybernetics of LivingMatter, Moscow, 1987.

. Alkunson. R.L., etal., Psychology, New York, 1987.

51. वही, साथ ही

. रामसेनाचार्य प्रणीत, तत्त्वानुशासन, दिल्ली, 1963

. Eliade, Mircea, Yoga–Immortality and Freedom, New York, 1958.

. योगबिन्दु (हरिभद्र)—सटीक, जैन ध.प्र.स., भावनगर, 1911

योगदृष्टिसमुच्चय, वही, दे.ला. बम्बई, 1993

योगविंशिका, वही, पातंजल योगसूत्र सटीक, आ.ग्रं. भावगनगर, 1922

. परमात्म प्रकाश, डा. उपाध्ये सं.अं., अगास, 1960

. समाधि तंत्र, पूज्यपाद, अ. परमानन्द, सरसावा, 1939

. ज्ञानार्णव - शुभचंद्र : हिंदी अनु., बम्बई, 1907

. कुंदकुंदाचार्य - कुंदकुंद भारती, सं. पन्नालाल सा., फल्टन, 1970.

52. विभिन्न योग प्रणालियों के लिए देखिये—

. नलिनी शुक्ला, "पातञ्जल-योग-सूत्र" का विवेचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन (शोधग्रबंध), कानपुर, वि. 2031.

. Iyenger, B.K.S., Light on Pranayama, London, 1979

. Mishra, R.S., Fundamentals of yoga, New York, 1959

. Woodroff, Sir John, The Serpent Power, Madras, 1986.

. Sen Sharma, D.B., Studies in Tantra Yoga, Karnal, 1985

. Briggs, G.W., Gorkhnath and the Kanphata Yogis, Delhi, 1989.

. Sahear, P.J., Zen-Yoga, A creative Psycho therapy to Self Intigration, Delhi, 1976.

. Evans-Wentz. W.Y., Tibetan Yoga and secret Docrines, Oxford, 1977.

. Swami Sivananda, Kundalini Yoga, Sivanand nagar, 1986.

. Swami Vishnu Tirtha, Devatma Shakti, Bombay, 1962.

. स्वतंत्रानन्द नाथ, श्रीमातृकाचक्र-विवेक, दतिया, 1977

. बुद्धराज भिक्षु, आना पान सती, दिल्ली, 1983

. युवाचार्य महाप्रज्ञ, जैन योग, चुरु, 1988

. जैन योग विशेषांक, तुलसी प्रज्ञा, जै.वि.भा. लाडनूं, 7.11-12, 1982 इत्यादि अनेक योग सम्बन्धी ग्रंथ द्रष्टव्य हैं।

53. Smelser, N., Sociology: Prentice Hall, 1980

. The Basic Writings of Sigmund Fieud, trem, ed., Brill, A.A., New York, 1938.

. Sheldon, J. Korchin, Modern Climical Psychology, Delhi, 1986.
. श्रीवास्तव, ह. आदि, समाज मनोविज्ञान, लखनऊ, 1978
. राहुलसांस्कृतायन, दर्शनदिग्दर्शन, इलाहाबाद, 1990
. फूलचंन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, जैनतत्त्व-मीमांसा, वाराणसी 1979
. लाइबनित्स, चिद् बिन्दु विद्या, लखनऊ, 1967 (अ.शि. शर्मा)
. काण्ट, इ., शुद्ध बुद्धि-मीमांसा, लखनऊ, 1965 (अ.भो.ना. शर्मा)
. बरनार्ड बोसाँके, तर्कशास्त्र अथवा ज्ञान की आकारिका, चण्डीगढ़, 1974
. भद्र रामयोगीन्द्र, हठयोग प्रदीपिका, बम्बई, 1962
. ध्यानशतक, हरिसूरि वृत्ति सहित, दिल्ली, 1976
. मनोहरवर्णी सहजानन्द, अध्यात्म-सहस्री प्रवचन, मेरठ, 1971, भा. 1, 2, 3.
. वूज़ले, ए.डी., ज्ञानमीमांसा परिचय, (अनु. गो.भट्ट), पटना, 1971
54. गुप्ता, म., जगदीशचन्द्र बोस, बम्बई, 1964